श्रीभुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी

उदित दिवाकर सों दिव्य देह शोभमान, मुकुट पै चन्द्र-लेखा छवि छटा छावै है ।
सोहैं चारु भूषण जड़ाऊ भव्य, दीरघ त्रिनेत्र दया वारि झरि लावै हैं ।
वर देत, अभय करत दूजो, तीजो लिये पाश चौथ अंकुश दिखावै है ।
समासीन भुवना भवानी मोरि, भक्तन को उर लाय आनँद बढ़ावै है ।

चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद-२११००६

'चण्डी' वर्ष ४६ : विशिष्ट अङ्क—६

सविधि
दश-महाविद्या-स्तोत्र-संग्रह

[भाग ४]

श्री भुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी

मानद सम्पादक
'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०
सम्पादक
ऋतशील शर्मा, एम० ए०

द्वितीय संस्करण : : फाल्गुन पूर्णिमा २०४४ वि० : : मार्च १९८८

अ - नु - क्र - म

॥ श्रीभुवनेश्वरी ध्यान ॥

उदित दिवाकर सी जगमग होति रहै,
माथे पर चन्द्र-कला नित नव भासमान।

एक कर वास पाश एक कर अंकुश है,
एक कर वर देय अपर अभय-दान।

भूवण विचित्र धारि पीन कुच-भार छवि,
भुवना त्रिनेत्रा चारु मंजुल स्वरूप-वान।

भक्ति उर लाय ध्यावे साधक निरन्तर जो,
राज-सुख देय अरु देय परिपूर्ण ज्ञान ॥

१	प्राक्कथन	३
२	आद्या शक्ति मूल प्रकृति-भगवती भुवनेश्वरी	५
३	श्रीभुवनेश्वरी प्रातः-स्मरणम्	९
४	आरती : गुप्तावतार बाबाश्री	१०
५	त्रैलोक्य-मङ्गल कवचम्	११
६	श्रीभुवनेश्वरी पंजर स्तोत्रम्	१३
७	त्रैलोक्य-मोहन कवचम्	१६
८	श्रीभुवनेश्वरी हृदय-स्तवः	१९
९	श्रीभुवनेश्वरी-स्तवः	२१
१०	भगवती भुवनेश्वरी स्तुति-रत्नम्	२५
११	श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य-स्तवः	४९
१२	आनन्द-मयी श्रीभुवनेश्वरी-स्तवः	५०
१३	श्रीभुवनेश्वरी-महा-स्तोत्रम्	५१
१४	श्रीभुवनेश्वरी-स्तवाष्टकम्	६६
१५	श्रीभुवनेश्वरी-शुद्ध-शक्ति-खड्ग-माला	६७
१६	श्रीभुवनेश्वरी-अष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्रम्	६८
१७	श्रीभुवनेश्वरी-सहस्रनाम-स्तोत्रम्	७०
१८	परिशिष्ट : 'श्री भुवनेश्वरी त्रैलोक्य-मङ्गल कवच' के सम्बन्ध में जिज्ञासा का समाधान	७५

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
शाक्त साधना पीठ
- प्रयाग-६ -

दो शब्द

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल के निर्देशन में शाक्त-साधकों की सुविधा के लिए एक ओर 'श्री भुवनेश्वरी-नित्यार्चन' आदि दश-महाविद्याओं की पूजा-पद्धतियों का प्रकाशन किया गया, तो दूसरी ओर उनके स्तोत्र-संग्रह भी सुलभ कराये गये। इसी क्रम में 'सिद्ध-स्तोत्रमाला' के अन्तर्गत 'श्री भुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी' का प्रकाशन सम्वत् २०२० में किया गया था। इधर अनेक वर्षों से उसकी प्रतियाँ समाप्त थीं और शाक्त बन्धु निरन्तर उसकी माँग कर रहे थे। अतः उसे परिवर्धित रूप में हिन्दी-रूपान्तर सहित पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम संस्करण में कुल ११ स्तोत्रादि मूल संस्कृत में थे, जबकि इस संस्करण में स्तोत्र प्रायः संस्कृत व हिन्दी-रूपान्तर सहित हैं। आदि शङ्कराचार्य के शिष्य श्रीपृथ्वीधराचार्य कृत 'श्रीभुवनेश्वरी महा-स्तोत्र' व प्रपञ्च-सार-तन्त्र में उद्धृत 'श्री भुवनेश्वरी-स्तुति-रत्न' विस्तृत हिन्दी अर्थ सहित पहली बार इस नवीन संस्करण में प्रकाशित हुए हैं।

श्रीपृथ्वीधराचार्य आदि शङ्कराचार्य के शिष्य होने के साथ ही तन्त्र, मन्त्र एवं सभी शास्त्रों में पारङ्गत सिद्ध महात्मा थे। शृङ्गेरी पीठ की गुरु-परम्परा के अनुसार सर्वश्री गौडपाद, गोविन्द, शङ्कराचार्य, पृथ्वीधराचार्य, ब्रह्म-चैतन्य, आनन्द-चैतन्य आदि का श्रीगुरु-क्रम है। इससे उक्त महात्मा के प्रतिष्ठा-पूर्ण स्थान का ज्ञान सहज ही होता है। ऐसे सिद्ध आचार्य की सात अनूठी कृतियों का उल्लेख मिलता है--

१ श्रीभुवनेश्वरी महा-स्तोत्र, २ लघु सप्तशती स्तोत्र, ३ सरस्वती स्तोत्र, ४ तन्त्र-विस्तर-विवरण, ५ मृच्छकटिक-व्याख्या, ६ वैशेषिक रत्न-कोष और ७ भुवनेश्वरी-अर्चन-पद्धति।

श्रीशङ्कराचार्य का समय विक्रम की नवीं शताब्दी अर्थात् आज से १२०० वर्ष पूर्व माना जाता है और श्रीपृथ्वीधराचार्य आपके ही बाद श्रृङ्गेरी-पीठ की गुरु-परम्परा में स्थान पाते हैं। अतः आपका काल भी लगभग उतना ही पुरातन है। भगवान् शङ्कराचार्य ने दार्शनिक साहित्य की रचना के साथ ही मधुर स्तोत्रों की रचना करते हुए लोगों का आध्यात्मिक और भौतिक कल्याण करने की परम्परा चलाई थी। उसी परम्परा का पालन श्रीपृथ्वीधराचार्य ने सुचारु रूप से किया, जिसके फल-स्वरूप उनकी रचनाओं में प्रस्तुत महा-स्तोत्र अपना विशेष स्थान रखता है।

इस सिद्ध स्तोत्र को आज तक स्वतन्त्र रूप से किसी ने प्रकाशित नहीं किया। कदाचित् पहले पहल निर्णयसागर प्रेस मुम्बई की 'भवानी-सहस्रनाम' पुस्तक के अन्त में इसे सङ्कलित किया गया। फिर रसशाला गोंडल (गुजरात) के 'आयुर्वेद-रहस्य' नामक पुस्तक में इसे स्थान मिला। तदनन्तर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित 'श्रीभुवनेश्वरी महा-स्तोत्रम्' के नाम से श्रीभुवनेश्वरी-विषयक पञ्चाङ्गादि के साथ इसे श्रीपद्मनाभ-कृत संस्कृत-भाष्य के साथ सन् १९६० में प्रकट किया गया। हिन्दी-अर्थ-सहित इसका प्रकाशन पहली बार इस 'स्तव-मञ्जरी' में हो रहा है, जिससे जिज्ञासु भक्त पाठकों को इसके पारायण में विशेष आनन्द मिल सकेगा, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत संग्रह में भगवती भुवनेश्वरी का 'सहस्रनाम' स्थानाभाव के कारण नहीं दिया गया है। इस हेतु 'श्रीभुवनेश्वरी सहस्रनाम-साधना' नामक पुस्तक का अलग से प्रकाशन किया जा रहा है, जिसमें सामान्य और भकारादि दोनों सहस्रनाम प्रकाशित हैं।

हमें विश्वास है कि सभी शाक्त-बन्धु 'श्रीभुवनेश्वरी-स्तव-मंजरी' के इस नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण से पूर्णतया लाभान्वित होंगे। इसी में हमारे श्रम की सार्थकता भी है।

प्रयाग — विनीत

२०-३-८८ — 'कुलभूषण'

भगवती भुवनेश्वरी से

जयति भवानी भुवनेश्वरी, सकल भुवन तेरा ही रूप।
नहीं समझ सकता है कोई, तेरी लीला अतुल अनूप॥
सुप्त ब्रह्म के हृदय-सिन्धु में, करती हो जब तुम किल्लोल।
स्वतः सतत उठने लगती हैं, लिप्सा-मय बहु लहरें लोल॥

सृजन उसी से हो जाते, अनगिनती ब्रह्माण्ड अनेक।
पर वास्तव में रमी हुई हो, उन सबमें केवल तुम एक॥
कल्पित स्वप्न गिनें हम उनको, अथवा गिनें तुम्हारा अङ्ग।
उलझन उलझ रही है सम्मुख, सुलझन का समझा दो ढङ्ग॥

नाच रहे तेरे इङ्गित पर, विधि हरि-हर ग्रह औ नक्षत्र।
जल-थल नभ में रास तुम्हारा, दीख रहा सतत सर्वत्र॥
हे शक्ति! तव शक्ति प्राप्त कर, बना हुआ है विश्व अतुल्य।
जहाँ तुम्हारी शक्ति नहीं है, वहाँ सभी हैं शव के तुल्य॥

बिना तुम्हारी सत्ता के तो, हिले न पत्ता किसी प्रकार।
माँ! तब पाप-पुण्य का बोझा, जन पर धरना है निस्सार॥
तेरी इच्छा से ही होते, जब संसृति में सारे कर्म।
कर्ता कौन हुआ तब उनका, समझा दो हमको यह मर्म॥

—श्रीरावत हिम्मतसिंह, साहित्य-रञ्जन

आद्या शक्ति मूल प्रकृति

भगवती भुवनेश्वरी

तन्त्रानुसार भगवती के दस प्रमुख स्वरूप दस महा-विद्यायें हैं—

काली तारा महा-विद्या षोडशी भुवनेश्वरी । भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।।
बगला सिद्ध-विद्या च मातङ्गी कमलात्मिका । एता दश महा-विद्या सिद्ध-विद्या प्रकीर्तिता ।।

अर्थात् १ काली, २ तारा ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्नमस्ता, ७ धूमावतो, ८ बगला, ९ मातङ्गी और १० कमला—इन दस देवताओं को महा-विद्या कहा जाता है।

इन दस महा-विद्याओं के प्रादुर्भाव, माहात्म्य, पूजा—अर्चनादि का विवरण अलग-अलग है, जो तन्त्र-शास्त्र एवं अन्य शास्त्र-पुराणादि, उपनिषदादि में वर्णित है। इनमें काली को प्रथमा विद्या कहा गया है और आद्या भी। इनके उपासक एवं कई तन्त्र-पुराणादि इन्हें ऐसा ही कहते हैं और मानने में भी विशेष आपत्ति नहीं है। दुर्गा–सप्तशती में महा-काली को योग-माया कहा गया है क्योंकि निराकार-ब्रह्म व ब्रह्म-शक्ति माया-समन्वित है। भुवनेश्वरी को चतुर्थी महा-विद्या कहा गया है किन्तु आद्या-शक्ति भुवनेश्वरी ही हैं, उन्हीं से सबका प्रादुर्भाव है, ऐसा कथन कुब्जिका तन्त्र में है—

भुवनानां पालकत्वाद् भुवनेशी प्रकीर्तिता । सृष्टि-स्थिति-करी देवी भुवनेशी प्रकीर्त्तिता ।।

अर्थात् त्रिभुवन की सृष्टि, स्थिति और पालन करती हैं, इस कारण भुवनेशी अर्थात् भुवन की ईश्वरी कही जाती हैं।

तोड़ल तन्त्र में भी कहा है—

श्रीमद्-भुवन-सुन्दर्य्यां दक्षिणे त्र्यम्बकं यजेत् । स्वर्गे मर्त्ये च पाताले सा आद्या भुवनेश्वरी ।

यहाँ भी भवनेश्वरी आद्या कही गई हैं।

इसी तोड़ल तन्त्र में दस महाविद्याओं के निरूपण में श्री महादेव जी ने कहा है—

'भुवनेश्वरी देवी के भैरव त्र्यम्वक हैं। इनकी अर्चना भुवन-सुन्दरी के दक्षिण भाग में करे।'

भुवनेश्वरी को सर्वत्र आद्या विद्या कहा जाता है। ये भैरव भुवनेश्वरी-सहित स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों स्थान में रमण करते हैं, इसलिए इन्हें त्र्यम्वक कहा जाता है।

अब श्री देवी भागवत, स्कन्ध १२, अध्याय ८ में भुवनेश्वरो के ज्योति-ब्रह्म एवं आद्या शक्ति होने का प्रकरण देखें—

पूर्व काल में मदोद्धत नामक दैत्य-राज थे। उन्होंने १०० वर्ष देवताओं से घोर युद्ध किया। परा-शक्ति की कृपा से देवताओं से दैत्य-राज हार गये। देव-गण हर्षित हो अहङ्कार-वश अपने-अपने पराक्रम का वर्णन करने लगे—'हम लोग देवता हैं, सृष्टि का उत्पादन-पालन करने में समर्थ हैं। हमारे आगे नीच दैत्य का क्या पराक्रम है, जो हम लोगों को वह जीत सके।'

अहङ्कार-वश देवताओं ने परा-शक्ति के प्रभाव पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया कि परा-शक्ति के ही प्रभाव से वे दैत्य-राज को परास्त कर पाये हैं। फलतः उसी समय तेजो-मय स्वरूप प्रगट हुआ, जिसका कोटि-सूर्य जैसा प्रकाश, कोटि-चन्द्र-समान शीतलता, कोटि-विद्युत्-समान दीप्ति थी। स्मरण रहे, विद्युत्-दीप्ति अरुण होती है।

देव-गण उसे देखकर परम आश्चर्य-चकित हुए। उस तेज का परिचय जानना चाहा। देवराज इन्द्र ने परिचय लेने के लिए पहले अग्नि को भेजा। अग्नि ने अहङ्कार-पूर्वक अपना परिचय देते हुए कि 'मैं अग्नि हूँ, क्षण में संसार को जला सकता हूँ', उस तेज-राशि का परिचय पूछा।

तेज-राशि ने एक तृण फैला दिया और अग्नि से उसे जलाने को कहा। अग्नि नहीं जला सके और लज्जित होकर वापस चले आये और इन्द्र से सब वृत्तान्त कहा। तब देवराज ने पवन से कहा कि 'तुम सबके प्राण हो, तुम पता लगाओ।'

अहङ्कार-पूर्ण पवन के उस तेज से परिचय पूछने पर तेज ने पवन पूछा से कि 'तुममें कौन-कौन शक्ति है ?' पवन ने घमण्ड से कहा कि 'मैं मातरिश्वर पवन हूँ, मेरी ही शक्ति से सब चलते फिरते हैं। मैं निकल जाता हूँ, तो कोई कुछ नहीं कर सकता।' यह सुनकर तेज ने उसी एक तृण को चलाने को कहा—किन्तु पवन उसे नहीं डिगा सके और लज्जित हो वापस चले आये।

देवताओं की प्रशंसा पर देव-राज इन्द्र स्वयं अहङ्कार-पूर्वक तेज के निकट गये। तेज अन्तर्हित हो गया। वार्त्ता भी न हो सकी। देवराज ने लज्जित हो प्राण ही त्यागना चाहा। आकाश-वाणी हुई—'सहस्राक्ष ! माया-बीज जपो। उसी से सुखी होगे।'

अहङ्कार त्याग कर इन्द्र नेत्र बन्दकर माया-बीज जपने लगे। अकस्मात् चैत्र शुक्ल नवमी को उसी स्थान पर तेज-मण्डल प्रकट हुआ। उसके मध्य में नव-यौवना, कोटि-बाल-रवि की प्रभा से युक्त, द्वितीया के चन्द्रमा-सदृश मुकुट धारण किये, तुङ्ग-स्तन-युता, चतुर्भुजी, वर-पाश-अभय-अंकुश लिये, कोमलांगी भक्त-वत्सला भुवनेश्वरी नाना आभरण-भूषिता, त्रिनयनी, मल्लिका की माला पहने उमा नाम शिवा निर्व्याज करुणा-मूर्ति प्रगट हुई।

यहाँ यह विचारणीय है कि भगवती भुवनेश्वरी के ध्यान और उक्त प्रकरण में वर्णित तेज-राशि में प्रगटित भगवती के रूप में कितनी समानता है। तेज तो ज्योतिर्मय ब्रह्म ही है, जो शक्ति-समन्वित है। अतः देवी-भागवत में वर्णित केवल इतने ही प्रसङ्ग से स्पष्ट हो जाता है—

देव-राज इन्द्र ने विविध स्तोत्रों से स्तुति करते हुए जगदम्बा के चरण-कमलों में प्रणाम करते हुए पूछा—'यह तेज क्या है और कहाँ से उत्पन्न हुआ है ?' भगवती बोलीं—'यह हमारा ब्रह्म-रूप है, जो सब कारणों का कारण है और माया का अधिष्ठान-भूत सर्व-साक्षी निरामय है, जिसे सभी वेद मानते हैं, जिसे सब तप कहते हैं, जिसकी इच्छा कर ब्रह्मचर्य करते हैं, वह पद तुमसे कहती हूँ। सब वेदों में ॐ को एकाक्षर ब्रह्म कहा जाता है और 'ह्रीं' भी एकाक्षर ब्रह्म है। ये दो बीज हमारे मुख्य हैं, जिनसे मैं माया-भाग और ब्रह्म-भाग से युक्त हो सकल संसार को बनाती हूँ। प्रथम भाग तो सच्चिदानन्द नामक भाग है और दूसरा माया प्रकृति-संज्ञक है। वह माया परा-शक्ति है और मैं ईश्वरी—शक्ति-मती हूँ। वह हमसे भिन्न नहीं है, जैसे चन्दमा से उसकी चन्द्रिका।

'यह माया हमारी साम्यावस्था है। सब जगत् के प्रलय हो जाने पर वह मुझमें ही लीन रहती है। जब पुनः सृष्टि होने को होती है, तब प्राणियों के कर्म के परिपाक से यह फिर प्रकट हो जाती है। यह माया हमारी अन्तर्मुखावस्था है। यह तमस् शब्द से योजित होती है। इसी बहिर्मुख तमोरूप से सत्व-गुण होता है। फिर सृष्टि के आदि में रजो-गुण होता है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर गुण-त्रयी हैं। ब्रह्मा में रजो-गुण अधिक है। ब्रह्मा स्थूल देह, हरि लिंग-देह, रुद्र कारण-देह और चौथी मैं इनसे भिन्न हूँ। गुण-त्रय की जो साम्यावस्था—अन्तर्मुखी माया है, वही चौथी अवस्था है। इससे ऊँचे हमारा परम-ब्रह्म-रूप आकार-रहित है।

'निर्गुण और सगुण के भेद से रूप दो प्रकार के हैं। निर्गुण माया-हीन और सगुण माया-सहित है। मैं सारा जगत् बना कर उसके अन्तःकरण में प्रवेश कर जाती हूँ और जीव को शुभाशुभ कर्म करने में प्रेरणा करती हूँ। सृष्टि, पालन, संहार करने में ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र को मैं ही प्रेरणा करती हूँ। मुझसे युक्त होकर ही पवन बहते, सूर्य तपते, तुम इन्द्र अपना काम करते, अग्नि जलाते और मृत्यु मारते हैं, इससे मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ।

'मेरे ही प्रसाद से तुम लोगों ने जय पाया। मैं ही तुम सबको कठपुतली की तरह नचाती हूँ। ऐसी मुझ सर्वात्मिका को तुम लोग भुला कर अपने ही गर्व से गर्वित हो अहङ्कार-युक्त दुष्ट मोह को प्राप्त हुए। तुम्हीं लोगों पर अनुग्रह करने के लिए मेरा यह तेज उत्पन्न हुआ। अब आज से सब भाव का अहङ्कार त्याग कर सच्चिदानन्द-रूपिणी मेरी शरण को प्राप्त करो।'

इस प्रकार मूल प्रकृति भगवती (याने उपर्युक्त भुवनेश्वरी) कह देवताओं से स्तुति-मान होती हुई अन्तर्धान हो गईं।

कहना नहीं होगा कि तान्त्रिक दस महा-विद्याओं के इष्ट मन्त्रों में—अन्य शास्त्र-पुराणादि अनुसार 'ह्रीं' मन्त्र भगवती भुवनेश्वरी महा-विद्या का ही मूल-मन्त्र है। अतः देवी भागवत महापुराण में वर्णित उक्त प्रसंग में भगवती-वाक्य है कि 'ॐ' एकाक्षर ब्रह्म है और 'ह्रीं' भी एकाक्षर ब्रह्म है। ये दो बीज-मन्त्र मेरे मुख्य हैं। अतः उपर्युक्त ध्यान और भगवती-वाक्य 'ह्रीं' मन्त्र से उपर्युक्त तेज वा साकार ज्योति ब्रह्म में प्रगटित शक्ति-ब्रह्म-मूर्ति का भगवती भुवनेश्वरी का ही होना स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है।

साधारण दृष्टि-कोण से तर्क के लिए संदेह रूप कहा जा सकता है कि 'उपर्युक्त वर्णन में तेज-मण्डल में प्रगटित देवी का नाम भुवनेश्वरी तो कहा है किन्तु उमा और शिवा भी कहा गया है। उमा तो पर्वत-राज हिमालय-कन्या पार्वती का नाम है, जो शिव-वल्लभा हैं और शिवा भी शिव-वल्लभा या शिव-शक्ति को कहा जाता है। यदि केवल भुवनेश्वरी नाम का ही वस्तुतः भाव होता, तो एक ही नाम कहा जाता—अन्य दो नहीं ?'

साकार शक्ति भगवती के तो अनन्त नाम और गुण हैं, जिसको 'नेति नेति' कहा गया है। फिर भी प्रत्यक्षता के लिए एक ही रूप के अनेक नाम तत्व, तथ्य, भाव और अर्थ से युक्त हैं। यहाँ 'सोऽहम्' का भाव आ जाता है अर्थात् जो वह है, वही मैं हूँ। संसार ही तो शक्ति-मय, शक्ति-ब्रह्म या ब्रह्म-मय है और भगवती भुवनेश्वरी ही आद्या या ब्रह्म-रूपिणी हैं। माया और प्रकृति भी वही हैं, जैसा कि उक्त प्रकरण में कहा गया है।

भगवती भुवनेश्वरी के उमा और शिवा नाम 'भुवनेश्वरी शत-नाम स्तोत्र' और 'सहस्र-नाम-स्तोत्र' में भी आये हैं। यथा 'शतनाम स्तोत्र' में—

महा-माया महा-विद्या महा-योगा महोत्कटा। माहेश्वरी कुमारी च ब्रह्माणी ब्रह्म-रूपिणी॥

उमा कुमारी लोकेशी सुकेशी पद्म-रागिणी।—आदि

'सहस्रनाम स्तोत्र' में तो इस विषय का प्रतिपादन और भी अच्छी तरह हो जाता है। यथा—

श्रीपार्वत्युवाच—या आद्या प्रकृतिर्नित्या सर्व-शास्त्रेषु गोपिता। तस्या श्रीभुवनेश्वर्या नामाष्टक-सहस्रकम्॥ कथयस्व महादेव ! येन देवी प्रसीदति॥

श्री महेश्वर उवाच—या आद्या प्रकृतिर्नित्या सर्व-शास्त्रेषु गोपिता। तस्या नाम-सहस्राणि कथयामि शृणुष्व तत्॥ ॐ आद्या कमला वाणी माया श्रीभुवनेश्वरी। भुवना भावना भव्या भवानी भव-मोचनी॥ रुद्राणी रुद्र-भक्ता च तथा रुद्र-प्रिया शिवा। उमा कामेश्वरी दुर्गा सर्वाणी सर्व-मङ्गला।

अर्थात् भुवनेश्वरी महामाया आद्या प्रकृति हैं। उमा, रुद्राणी आदि भी वह हैं। यहाँ भी भुवनेश्वरी के आद्या-शक्ति होने का प्रमाण है।

एक बात और। 'उमा' शब्द 'अ, उ, म्' इन तीनों वर्णों के व्यत्यय हो जाने से 'वम्' और 'ॐ' रूप बन जाते हैं व्याकरण से।

'अ + उ + म्' में गुण-सन्धि होने से 'ओम्' प्रणव बनता है। 'उ + अ + म्' में यण् सन्धि होने से 'वम्' बनता है। 'उ + म् + अ' रहने से स्त्रीत्व-विवक्षा में टाप् प्रत्यय होने से 'उमा' आद्या शक्ति-वाचक ही है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'उमा' के अन्य अर्थ इस प्रकार भी हैं—

(१) कठोर तपस्या के समय मेना ने अपनी पुत्री पार्वती से कहा कि 'हे उ, तपो मा' अर्थात् इतनी कठोर तपस्या अब मत करो। बाद में पार्वती का 'उमा' नाम ही विख्यात हो गया।

(२) उमा में 'अ, उ, म्' ये तीनों वर्ण क्रमशः वासुदेव, शंकर और ब्रह्मा के बोधक हैं।

(३) अथवा भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों काल के बोधक हैं।

(४) अथवा ब्राह्मणादि वर्णों के मस्तक में स्थित त्रिपुण्ड चन्दन का प्रतीक है।

इस प्रकार आद्या-शक्ति-वाचक होने से 'उमा' भुवनेश्वरी का नामान्तर युक्ति-युक्त ही है।

उपर्युक्त देवी भागवत प्रकरण में भुवनेश्वरी का 'शिवा' नाम जो आया है, उसका भाव इस प्रकार है—शिव अनादि है, ब्रह्म है या ज्योति-ब्रह्म है और शक्ति भी ब्रह्म है या ज्योति-ब्रह्म है। शक्ति और ब्रह्म मिलकर ही तो 'एको ब्रह्म' होता है। अतः ब्रह्म या पुरुष-ब्रह्म की 'शिव' और शक्ति-ब्रह्म की 'शिवा' संज्ञा भी है।

ऊपर भगवती के विराट् रूप का प्रसङ्ग आया है। जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्-गीता में पुरुष-रूप भगवान् श्रीकृष्ण ने पुरुष-रूप श्री अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाया है, उसी प्रकार—बल्कि उससे अत्यधिक महत्व-पूर्ण—शक्ति-ब्रह्म ने भी इन्द्रादि देवताओं को अपना विराट् रूप दिखाया है, जो श्री देवी भागवत के स्कन्ध ७, अध्याय ३१-३२ और ३३ में वर्णित है। वहाँ भी भगवती ने तेज-रूप प्रगट हो देवताओं को पहले साकार शक्ति-रूप का दर्शन दिया। बाद में देवताओं के आग्रह पर अपना विराट् रूप दिखाया है। उसका वर्णन निम्न प्रकार है—

'वही तेज एक दिव्य स्त्री का स्वरूप हो गया, अतीव रमणीयाङ्गी, कुमारी, नव-युवती, शब्दायमान किङ्किणी, क्षुद्र घण्टिका में बँधी सुवर्ण की मंजूषा, अँगूठी आदि पहने ...... चन्द्र-सदृश रेखा धारण किये, पाश, अंकुश, अभय, वर मुद्रा-युक्ता, त्रिनेत्रा, रक्त वस्त्र पहने, अनार के पुष्प के समान अरुण-वर्णा, षोडश शृङ्गार किये, करुण रस की मूर्ति भगवती को देवताओं ने देखा।'

यहाँ भी ज्योति-ब्रह्म में भगवती के रूप में उपर्युक्त भुवनेश्वरी के ध्यान जैसा चन्द्रमा धारण किये, त्रिनेत्रा, चतुर्भुजी, पाश और अंकुश धारण किये, अभय और वर-मुद्रा-युक्ता मूर्ति आयी है। अतः यहाँ भी भुवनेश्वरी-रूप ही है और ज्योति-ब्रह्म से प्रगट भुवनेश्वरी का आद्या-शक्ति होना प्रमाणित है।

वेदान्त में भी स्पष्ट माना है—'माया तु प्रकृतिः'—माया ही प्रकृति है। 'माया या सृज्यते जगत्'—माया ही से जगत् का सृजन होता है, और 'माया-बीज' नाम से श्रीभुवनेश्वरी - बीज 'ह्रीं' की ही ख्याति है। इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी ही आद्या-शक्ति हैं। अतः माया, महा-माया या प्रकृति वही महा-विद्या भुवनेश्वरी ही हैं, इसमें सन्देह नहीं।

* * *

श्री भुवनेश्वर्यै नमः

श्रीभुवनेश्वरी प्रातः-स्मरणम्

उद्यदिन-द्युतिमिन्दु-किरीटां, तुङ्ग-कुचां नयन-त्रय-युक्ताम् ।

स्मेरामभय-वरांकुश-पाशां, प्रातः स्मरामि श्रीभुवनेश्वरीम् ।। १

प्रातः-कालीन सूर्य की कान्ति के समान आभावाली, मुकुट पर चन्द्रमावाली, हँस-मुखी, अभय-वर-अंकुश-पाश-धारिणी, श्री भुवनेश्वरी को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ ।। १

सिन्दूरारुण-विग्रहां त्रि-नयनां माणिक्य - मौलि-स्फुरत्,

तारा-नायक-शेखरां स्मित - मुखीमापीन-वक्षो-रुहाम् ।

पाणिभ्यामलि - पूर्ण-रत्न - चषकं संविभ्रतीं शाश्वतीम्,

प्रातः स्मरामि रत्न-घटस्थ-मध्य-चरणां पराम्बिकाम् ।। २

सिन्दूर के समान लाल शरीरवाली, त्रिनेत्रा, माणिक्यों से चमकते मुकुटवाली, चन्द्र-चूडा, हँसमुखी आपीन-वक्षोरुहा, दोनों हाथों में सुरा-पूर्ण रत्न-जटित पात्र-धारिणी, रत्न-जटित घंटों के मध्य में चरण रखनेवाली पराम्बिका को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ ।। २

श्यामाङ्गीं शशि-शेखरां निज-करैर्नीतं च रक्तोत्पलम्,

रत्नाढच-चषकं गुणं भय-हरं संविभ्रतीं शाश्वतीम् ।

मुक्ता-हार-लसत्-पयोधर - नतां नेत्र - त्रयोल्लासिनीम्,

प्रातः स्मरामि भुवनां सुर-पूजितां रक्ताम्बुज-स्थिताम् ।। ३

श्यामाङ्गी, चन्द्र-शेखरा, हाथों में रक्त-कमल-रत्न-जटित पान-पात्र, पाश और अभय-धारिणी, मोतियों के हार से सुशोभित-पयोधरों से विनम्रा, तीन नेत्रों से उल्लास-पूर्णा, रक्त-कमल पर विराजिता श्री भुवना देवी को मैं प्रात काल स्मरण करता हूँ ।। ३

उद्यच्चन्द्र-सहस्र - रश्मि - सदृशीं वह्नीन्दु - सूर्येक्षणाम्,

माध्वी-विन्दु - विघूर्णितेक्षण-युगां वीणा - रवत्याकुलाम् ।

माला - पुस्तक - सिन्धु - पात्र-कमलं दोर्भिर्वहन्तीं मुदा,

प्रातः स्मरामि भुवनेश्वरीं सर्वादि-देवैः सदा स्तुताम् ।। ४

उदीयमान, चन्द्रमा की सहस्र किरणों की जैसी आभावाली, अग्नि-चन्द्र-सूर्य-रूपी तीन नेत्र-धारिणी, माध्वीक-मद्य के विन्दु-ग्रहण से चञ्चल नेत्रोंवाली, वीणा-वादन-तत्परा, माला-पुस्तक-पान-पात्र और कमल-हस्ता, सभी देवों द्वारा सदैव संस्तुता भुवनेश्वरी को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ ।। ४

सरोज - नयनां चलत् - कनक - कुण्डलां शैशवीं,

धनुर्जप - वटी - करामुदित - सूर्य - कोटि - प्रभाम् ।

शशाङ्क - कृत - शेखरां शव-शरीर - संस्थां शिवाम्,

प्रातः स्मरामि भुवनेश्वरीं शत्रु - गति-स्तम्भिनीम् ।। ५

कमल-नयना, चञ्चल-स्वर्ण-कुण्डल-धारिणी, धनुष-जप-माला-हस्ता, उदीयमान सूर्य जैसी कान्तिवाली, चन्द्र-शेखरा, शवासीना, शत्रु-गति को स्तम्भित करनेवाली शिवा भुवनेश्वरी को मैं प्रातः-काल स्मरण करता हूँ ॥ ५

वीणा-वादन - तत्परां त्रि-नयनां त्रैलोक्य-रक्षा - पराम्,
माध्वी-पान-परायणां शव-गतां मन्द-स्मितां चिन्मयीम् ।
माया-बीज-विभूषितां शशि-कलां चूडां च सत्कुण्डलाम्,
प्रातः स्मरामि भुवनेश्वरीं भगवतीं सर्वैः संस्तुताम् ।। ६

वीणा बजाती हुई, त्रिनेत्रा, तीनों लोकों की रक्षा में तत्परा, माध्वीक-पान-परायणा, शवासीना, मन्द-मन्द मुस्कुरानेवाली, चिन्मयी, माया-बीज-विभूषिता, चन्द्र-कला से युक्त चूडावाली, सुन्दर-कुण्डल-धारिणी, सभी प्राणियों द्वारा प्रार्थिता भगवती भुवनेश्वरी को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ ।। ६

आरती

परम पूज्य गुप्तावतार बाबाश्री

जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां, अमर परात्पर तत्पर, जय परमेश्वरि मां ।
जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां० ।। १
त्रिगुण-परा गुण-धामा, निर्गुण-सगुणा मां, भयकर भय-जग-नाशिनि, जननी सद्गुण मां ।
जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां० ।। २
पालिनि पर ब्रह्माण्ड, भव खण्डिनि भव मां, शक्ति अनन्त प्रचण्डा, नव मण्डिनि नव मां ।
जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां० ।। ३
जगदाधारिणि, धारिणि नभ नक्षत्र कर मां, परमानन्द प्रसारिणि, भक्ति-भाव सर मां ।
जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां० ।। ४
पञ्च पराप्रक्षालिनि, बल-शालिनि बलि मां, बलिमख नखशिख-धारिणि, हरिपालिनि बलि मां
जय रासेश्वरि मां० जय भुवनेश्वरि मां० ।। ५
वर्णन-पर भाषा-पर, वाणी-पर सर मां, 'मोती' पर दाया कर, माया हर तम मां ।
जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां, अमर परात्पर तत्पर, जय परमेश्वरि मां ।
जय रासेश्वरि मां, जय भुवनेश्वरि मां ।। ६

[१]

त्रैलोक्य-मंगल कवचम्

देव्युवाच—

भुवनेश्याश्च देवेश!या या विद्याः प्रकाशिताः, श्रुताश्चाधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि सांप्रतं ।१
त्रैलोक्य - मङ्गलं नाम कवचं यत् पुरोदितम्, कथयस्व महा-देव ! मम प्रीति-करं परम् ।।२

देवी ने कहा— हे देवेश ! भुवनेशी की जिन-जिन विद्याओं को आपने प्रकट किया, उन सबको मैंने सुना। अब मैं त्रैलोक्य-मङ्गल नामक कवच को सुनना चाहती हूँ, जिसका उल्लेख पहले हुआ है। हे महा-देव ! मुझे प्रसन्न करनेवाले उस कवच को कहिये ।। १-२

ईश्वर उवाच—

श्रृणु पार्वति ! वक्ष्यामि सावधानाऽवधारय, त्रैलोक्य-मङ्गलं नाम कवचं मन्त्र-विग्रहम् ।।३
सिद्ध-विद्या-मयं देवि!सर्वैश्वर्य-प्रदायकम्, पठनाद् धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्य-वान् भवेत् ।।४
त्रैलोक्य-मङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिश्शिवः, छन्दो विराट् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ।
धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।।५

ईश्वर बोले—हे पार्वति ! सुनो। मन्त्र-स्वरूप त्रैलोक्य-मङ्गल नामक कवच को कहूँगा, सावधान होकर उसे ग्रहण करो। हे देवि ! यह सिद्ध-विद्या-मय है, सभी ऐश्वर्यों का देनेवाला है। इसके पाठ या धारण करने से मनुष्य तीनों लोकों के ऐश्वर्य से युक्त होता है ।। ३-४

इस त्रैलोक्य-मङ्गल कवच के ऋषि शिव, छन्द विराट्, देवता जगद्धात्री भुवनेश्वरी और विनियोग धर्मार्थ-काम के लिए है ।। ५

कवच-स्तोत्र

ह्रीं बीजं मे शिरः पातु भुवनेशी ललाटकम्, ऐं पातु दक्ष-नेत्रं मे ह्रीं पातु वाम-लोचनम् ।।१
श्रीं पातु दक्ष-कर्णं मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी, वाम-कर्णं सदा पातु ऐं घ्राणं पातु मे सदा ।।२
ह्रीं पातु वदनं देवी ऐं पातु रसनां मम, वाक्-पुटा च त्रिवर्णात्मा कण्ठं पातु पराम्बिका ।।३
श्रीं स्कन्धौ पातु नियतं ह्रीं भुजौ पातु सर्वदा, क्लीं करौ त्रिपुरेशानी त्रिपुरैश्वर्य-दायिनी ।।४
ॐ पातु हृदयं ह्रीं मे मध्य-देशं सदाऽवतु, क्रौं पातु नाभि-देशं सा त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ।।५
सर्व-बीज-प्रभा पृष्ठं पातु सर्व-वशङ्करी, ह्रीं पातु गुह्य-देशं मे नमो भगवती कटिम् ।।६
माहेश्वरी सदा पातु सक्थिनी जानु-युग्मकम्, अन्न-पूर्णा सदा पातु स्वाहा पातु पद-द्वयम् ।।७
सप्त-दशाक्षरी पायादन्न-पूर्णाऽखिलं वपुः, तारं माया रमा कामः षोडशार्णा ततः परं ।।८
शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा, तारं दुर्गे-युगं रक्षिणि स्वाहेति दशाक्षरी ।।९
जय-दुर्गा घन-श्यामा पातु मां पूर्वतो मुदा, माया-बीजादिका चैषा दशार्णा च परा तथा ।।१०
उत्तप्त-काञ्चनाभासा जय-दुर्गाऽनलेऽवतु, तारं ह्रीं दुं दुर्गायै नमोऽष्ट-वर्णात्मिका परा ।।११

शङ्ख-चक्र-धनुर्बाण-धरा मां दक्षिणेऽवतु, महिष-मर्दिनी स्वाहा वसु-वर्णात्मिका परा ।।१२
नैर्ऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुर-नाशिनी, माया पद्मावती स्वाहा सप्तार्णा परिकीर्तिता ।।१३
पद्मावती पद्म-संस्था पश्चिमे मां सदाऽवतु, पाशांकुश-पुटा मायेति परमेश्वरि स्वाहा ।।१४
त्रयोदशार्णा ताराद्या अश्वारूढाऽनिलेऽवतु, सरस्वती पञ्च-शरे नित्य-क्लिन्ने मद-द्रवे ।।१५
स्वाहा च त्र्यक्षरी विद्या मामुत्तरे सदाऽवतु, तारं माया तु कवचं खे रक्षेत् सततं वधूः ।।१६
हूंक्षेंह्रींफट् महा-विद्या द्वादशार्णाऽखिल-प्रदा, त्वरिताष्टादिभिः पायाच्छिव-कोणे सदा च मां ।।
ऐंक्लींसौः सततं बाला मामूर्ध्व-देशतोऽवतु, विन्द्वन्ता भैरवी बाला भूमौ च मां सदाऽवतु ।।१८

फल-श्रुति

इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्य-मङ्गलं परं, सारात् सार-तरं पुण्यं महा-विद्यौघ-विग्रहं ।।१
अस्य हि पठनात् सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः, इन्द्राद्याः सकला देवाः पठनाद् धारणाद्यतः ।।२
सर्व-सिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः, पुष्पांजल्यष्टकं दत्वा मूलेनैव पठेत् सकृत् ।।३
संवत्सर-कृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात्, प्रीतिमान् योऽन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे ।।
वाणी च निवसेद् वक्त्रे सत्यं न संशयः, यो धारयति पुण्यात्मा त्रैलोक्य-मङ्गलाभिधं ।।५
कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्य-वतां वरः, सर्वैश्वर्य-युतो भूत्वा त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।।६
पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वाम-भुजे तथा, बहु-पुत्र-वती भूत्वा वन्ध्याऽपि लभते सुतं ।।७
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तं जनम्, एतत् कवचमज्ञात्वा यो जपेद् भुवनेश्वरीं ।।
दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।८

यह त्रैलोक्य-मङ्गल कवच अति पुण्य-दायक है, सार का भी सार है, महा-विद्याओं का सामूहिक स्वरूप है। इसका पाठ करने से कुबेर भी धनेश्वर होते हैं। इन्द्रादि सभी देव इसके धारण करने से सभी सिद्धियों के स्वामी होकर समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर एक बार मूल पाठ करे, तो वर्ष भर की पूजा का फल मिलता है। लक्ष्मी घर में स्थिर होकर रहती है और मुख में सरस्वती निवास करती है, यह सत्य है। इसमें सन्देह नहीं।

जो पुण्यात्मा त्रैलोक्य-मङ्गल नामक इस पवित्र कवच को धारण करता है, वह सभी ऐश्वर्यों से युक्त होकर त्रैलोक्य-विजयी होता है। पुरुष इसे दाँई बाहु में और स्त्री बाँई भुजा में धारण करे। बाँझ स्त्री भी बहु-पुत्र-वती होती है। ब्रह्मास्त्रादि शस्त्र उस व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाते। इस कवच को जाने बिना जो भुवनेश्वरी के मन्त्र का जप करता है, वह दरिद्र होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है।

।। श्रीरुद्रयामले त्रैलोक्य-मङ्गलं नाम श्रीभुवनेश्वरी-कवचं सम्पूर्णम् ।।

[२]

श्रीभुवनेश्वरी पञ्जर स्तोत्रम्

'पञ्जर' का अर्थ है पिंजरा। जिस प्रकार कोई पक्षी पिंजरे में बन्द कर दिया जाता है, तो उसे बिल्ली आदि हिंसक जीव हानि नहीं पहुँचा सकते और वह सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार जो साधक अपने को श्री भुवनेश्वरी के मन्त्र से बने हुये इस पिंजरे में सुरक्षित रखता है, उसे कोई भी उसका शत्रु राजा से लेकर रङ्क तक कभी हानि नहीं पहुँचा सकता।

इस स्तोत्र में चौदह दिशाओं में आगे-पीछे, नीचे-ऊपर, दोनों बगल अर्थात् सब ओर से चौदह मन्त्रों से भगवती भुवनेश्वरी से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है। इसका पाठ-कर्ता रण में, राज-कुल में, द्यूत में तथा सर्वत्र विजयी होता है। इसके पाठ करनेवाले को कृत्या, रोग, पिशाच, भूत-प्रेत कोई भी बाधा नहीं पहुँचा सकता।

प्रातःकाल, मध्याह्न, सायं-काल तथा अर्ध-रात्रि में भगवती भुवनेश्वरी की पूजा कर जो इसका पाठ करता है, वह साधक मृत्यु को भी जीत लेता है। ब्रह्मास्त्र आदि कोई भी शस्त्र उसके शरीर पर नहीं चल सकता तथा इसका पाठ करनेवाला संसार में धनवान्, पुत्र-पौत्रवान् और यशस्वी होकर अन्त में श्रीभुवनेश्वरी-लोक को पहुँचता है।

इस पञ्जर स्तोत्र को गुरु-देव और इष्ट-देव पर श्रद्धा न रखनेवाले पुरुषों को कभी न बताना चाहिये। सिद्धि चाहनेवाला भक्त इस पञ्जर स्तोत्र को गुह्य रखे और भय के समय, होम के समय, विशेष कर पूजारम्भ के समय और दीपारम्भ के समय जो इसका पाठ करता है, उसकी सब कामनायें सिद्ध होती हैं और उसके कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं। इस स्तोत्र के पाठ करनेवाले को ज्वर, महामारी आदि कोई रोग पीड़ित नहीं करते और न उसे जल, पृथ्वी, बिजली, अग्नि, सर्प और शत्रु आदि किसी से भय होता है।

इस स्तोत्र के पाठ में प्रत्येक दिशा में रक्षा करने के लिये 'भुवनेश्वरि' के बाद—'योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते'—से लेकर— त्रैलोक्य-मोहिन्यै विद्महे विश्व-जनन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्'—इतना पाठ अवश्य पढ़ना चाहिये, जैसा कि स्तोत्र में आगे दिया भी है। इस विशेषता पर ध्यान देने के लिये यहाँ उल्लेख किया गया है।

यह स्तोत्र तीन सौ वर्षों से भी ऊपर का लिखा हुआ पुराने पत्रों में अब भी विद्यमान है। स्तोत्र के अन्त में लेखक ने लिखने का संवत् १७६८, मास, तिथि, पक्ष और दिन सब लिखे हैं। अपना नाम अनिरुद्ध भूसुर (ब्राह्मण) लिखा है। लिखनेवाला इसका नित्य पाठ करता था, अतः इस स्तोत्र का पाठ अवश्यमेव लाभदायक है क्योंकि यह अनुभूत है।

पञ्जर स्तोत्रम्

इदं श्री भुवनेश्वर्याः पञ्जरं भुवि दुर्लभम्।
येन संरक्षितो मर्त्यो वाणैः शस्त्रैर्न बाध्यते ॥ १
ज्वर-मारी-पशु-व्याघ्र-कृत्या-चौराद्युपद्रवैः ।
नद्यम्बु-धरणी - विद्युत्कृशानु-भुजगारिभिः ॥ २
सौभाग्यारोग्य-सम्पत्ति-कीर्ति-कान्ति-यशोऽर्थदम् ॥ ३

ॐ क्रों श्रींह्रींऐं सौः पूर्वेऽधिष्ठाय मां पाहि चक्रिणि भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी - गण-सेविते !
कृष्ण-वर्णे महद् - भूते वृहत्-कर्णे भयङ्करि ।।
देव-देवि ! महा-देवि ! मम शत्रून् विनाशय ।
उत्तिष्ठ पुरुषे किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं ।।
यदि शक्यमशक्यं तन्मे भगवति ! शमय स्वाहा ।
त्रैलोक्य-मोहिन्यै विद्महे विश्व-जनन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। १
ममाग्नेयां स्थिता पाहि गदिनी - भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी - गण - सेविते ।।
कृष्ण-वर्णे महद्-भूते लम्ब - कर्णे भयङ्करि !
देव-देवि ! महा - देवि ! मम शत्रून् विनाशय ।
उत्तिष्ठ पुरुषे किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं ।
यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा ।।
त्रैलोक्य-मोहिन्यै विद्महे विश्व-जनन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। २
याम्येऽधिष्ठाय मां पाहि शङ्खिनी - भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते''' तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ३
नैर्ऋत्ये मां स्थिता पाहि खड्गिनी-भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ४
पश्चिमे मां स्थिता पाहि पाशिनी-भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ५
वायव्ये मां स्थिता पाहि शक्तिनी-भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ६
सौम्येऽधिष्ठाय मां पाहि चापिनी-भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ७
ईशेऽधिष्ठाय मां पाहि शूलिनी - भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ८
ऊर्ध्वेऽधिष्ठाय मां पाहि पद्मिनी-भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। ९

अधस्तान्मां स्थिता पाहि वाणिनी-भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। १०
अग्रतो मां सदा पाहि सांकुशे भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गुण सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।।११
पृष्ठतो मां स्थिता पाहि वरदे भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। १२
सर्वतो मां सदा पाहि सायुधे भुवनेश्वरि !
योग-विद्ये महा-माये योगिनी-गण-सेविते...तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।। १३

फल-श्रुति

प्रोक्ता दिङ्-मनवो देवि ! चतुर्दश शुभ - प्रदाः ।
एतत् पञ्जरमाख्यातं सर्व-रक्षा-करं नृणाम् ।।
गोपनीयं प्रयत्नेन स्व - योनिरिव पार्वति !
न भक्ताय प्रदातव्यं नाशिष्याय कदाचन ।।
सिद्धि-कामो महा-देवि ! गोपयेन्मातृ-जार-वत् ।
भय-काले होम - काले पूजा-काले विशेषतः ।।
दीपस्यारम्भ-काले वै यः कुर्यात् पञ्जरं सुधीः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रत्यूहैर्नाभि - भूयते ।।
रणे राज - कुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् ।
कृत्या - रोग - पिशाचाद्यैर्न कदाचित् प्रबाध्यते ।।
प्रातः-काले च मध्यान्हे सन्ध्यायामर्द्ध-रात्रके ।
यः कुर्यात् पञ्जरं मर्त्यो देवीं ध्यात्वा समाहितः ।।
काल - मृत्युमपि प्राप्तं जयेदत्र न संशयः ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्-गात्रं न लगन्ति च ।।
पुत्र-वान् धन-वाँल्लोके यशस्वी जायते नरः ।।

त्रैलोक्य-मोहन कवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन्, परमेशान, सर्वागम-विशारद, कवचं भुवनेश्वर्याः कथयस्व महेश्वर !

श्री भैरव उवाच—

शृणु देवि, महेशानि ! कवचं सर्व-कामदं, त्रैलोक्य-मोहनं नाम सर्वेप्सित-फल-प्रदं ।

श्रीदेवी ने कहा—हे सभी आगमों के ज्ञाता भगवन् महेश्वर ! भुवनेश्वरी के कवच को बताइये ।

श्रीभैरव ने कहा—हे महेशानि ! त्रैलोक्य-मोहन नामक कवच सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाला और सभी अभीष्ट फलों का देनेवाला है । उसे सुनो ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीत्रैलोक्य-मोहन-कवचस्य श्रीसदा-शिव ऋषिः । विराट् छन्दः । श्रीभुवनेश्वरी देवता । चतुर्वर्ग-सिद्ध्यर्थं कवच-पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीसदा-शिव-ऋषये नमः शिरसि । विराट्-छन्दसे नमः मुखे । श्रीभुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । चतुर्वर्ग-सिद्ध्यर्थं कवच-पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कवच-स्तोत्र

ॐ ह्रीं क्लीं मे शिरः पातु श्रीं फट् पातु ललाटकम् ।
सिद्ध - पञ्चाक्षरी पायान्नेत्रे मे भुवनेश्वरी ।। १
श्रीं क्लीं ह्रीं मे श्रुतीः पातु नमः पातु च नासिकाम् ।
देवी षडक्षरी पातु वदनं मुण्ड - भूषणा ।। २
ॐ ह्रीं श्रीं ऐं गलं पातु जिह्वां पायान्महेश्वरी ।
ऐं स्कन्धौ पातु मे देवी महा-त्रि-भुवनेश्वरी ।। ३
हूं घण्टां मे सदा पातु देव्येकाक्षर - रूपिणी ।
ऐं ह्रीं श्रीं हूं तु फट् पायादीश्वरी मे भुज-द्वयम् ।। ४
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं फट् पायाद् भुवनेशी स्तन-द्वयम् ।
ह्रां ह्रीं ऐं फट् महा-माया देवी च हृदयं मम ।। ५
ऐं ह्रीं श्रीं हूं तु फट् पायात् पार्श्वौ काम-स्वरूपिणी ।
ॐ ह्रीं क्लीं ऐं नमः पायात् कुक्षिं महा-षडक्षरी ।। ६

ऐं सौः ऐं ऐं क्लीं फट् स्वाहा कटि-देशे सदाऽवतु ।
अष्टाक्षरी महा - विद्या देवेशी भुवनेश्वरी ।। ७
ॐ ह्रीं ह्रौं ऐं श्रीं ह्रीं फट् पायान्मे गुह्य-स्थलं सदा ।
षडक्षरी महा-विद्या साक्षाद् ब्रह्म - स्वरूपिणी ।। ८
ऐं ह्रां ह्रौं ह्रूं नमो देव्यै देवि ! सर्वं पदं ततः,
दुस्तरं पदं तारय तारय प्रणव - द्वयम् ।
स्वाहा इति महा-विद्या जानुनि मे सदाऽवतु ।। ९
ऐं सौः ॐ ऐं क्लीं फट् स्वाहा जंघेऽव्याद् भुवनेश्वरी ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं फट् पायात् पादौ मे भुवनेश्वरी ।। १०
ॐ ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं ऐं ऐं सौः सौः वद वद ।
वाग्वादिनीति च देवि विद्या या विश्व - व्यापिनी ।। ११
सौःसौःसौः ऐंऐंऐं क्लींक्लींक्लीं श्रींश्रींश्रीं ह्रींह्रींह्रीं ॐ ।
ॐ ॐ चतुर्दशात्मिका विद्या पायात् बाहू तु मे ।। १२
सकलं सर्व - भीतिभ्यः शरीरं भुवनेश्वरी ।
ॐ ह्रीं श्रीं इन्द्र - दिग्-भागे पायान्मे चापराजिता ।। १३
स्त्रीं ऐं ह्रीं विजया पायादिन्दुमदग्नि-दिक्-स्थले ।
ॐ श्रीं सौः क्लीं जया पातु याम्यां मां कवचान्वितम् ।। १४
ह्रीं ह्रीं ऐं सौः ह्सौः पायान्नैऋतिर्मां तु परात्मिका ।
ॐ श्रीं श्रीं ह्रीं सदा पायात् पश्चिमे ब्रह्म-रूपिणी ।। १५
ॐ ह्रां सौः मां भयाद् रक्षेद् वायव्यां मन्त्र-रूपिणी ।
ऐं क्लीं श्रीं सौः सदाऽव्यान्मां कौवेर्यां नग-नन्दिनी ।। १६
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महा-देवी ऐशान्यां पातु नित्यशः ।
ॐ ह्रीं मन्त्र-मयी विद्या पायादूर्ध्वं सुरेश्वरी ।। १७
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मां पायादधस्था भुवनेश्वरी ।
एवं दश - दिशो रक्षेत् सर्व - मन्त्र - मयी शिवा ।। १८
प्रभाते पातु चामुण्डा श्रीं क्लीं ऐं सौः स्वरूपिणी ।
मध्याह्नेऽव्यान्मामम्बा श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः स्वरूपिणी ।। १९

सायं पायादुमा-देवी ऐं ह्रीं क्लीं सौः स्वरूपिणी ।
निशादौ पातु रुद्राणी ॐ क्लीं क्रीं सौः स्वरूपिणी ।। २०
निशीथे पातु ब्रह्माणी क्रीं हू ह्रीं ह्रीं स्वरूपिणी ।
निशान्ते वैष्णवी पायादोमैं ह्रीं क्लीं स्वरूपिणी ।। २१
सर्व-काले च मां पायादों ह्रीं श्रीं भुवनेश्वरी ।
एषा विद्या मया गुप्ता तन्त्रेभ्यश्चापि साम्प्रतम् ।। २२

फल-श्रुति

देवेशि ! कथितां तुभ्यं कवचेच्छा त्वयि प्रिये ! इति ते कथितं देवि ! गुह्य-तर परं ।
त्रैलोक्य-मोहनं नाम कवचं मन्त्र-विग्रहं, ब्रह्म-विद्या-मयं भद्रे ! केवलं ब्रह्म-रूपिणं ।। १
मन्त्र-विद्या-मयं चैव कवचं मन्मुखोदितं, गुरुमभ्यर्च्य विधि-वत् कवचं धारयेद्यदि ।
साधको वै यथा-ध्यानं तत्क्षणाद् भैरवो भवेत्, सर्व-पाप-विनिर्मुक्तः कुल-कोटि समुद्धरेत् ।।२
गुरुः स्यात् सर्व-विद्यासु ह्यधिकारो जपादिषु, शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्या-विधिः स्मृता ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा तावद्धोमादिकं तथा, त्रैलोक्ये विचरेद्वीरो गण-नाथो यथा स्वयं ।।३
गद्य-पद्य-मयी वाणी भवेद् गङ्गा-प्रवाह-वत्, पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्वा मूलेनैव पठेत् सकृत् ।।४

हे देवेशि ! तुम्हारी कवचेच्छा के अनुसार यह अति गोपनीय 'त्रैलोक्य-मोहन' नामक मन्त्रात्मक कवच कहा गया । हे भद्रे ! यह ब्रह्म-विद्या से भरा हुआ है और मात्र ब्रह्म-रूपात्मक है ।। १

मेरे मुख से निकला यह कवच मन्त्र-विद्यात्मक है । गुरुदेव की पूजा कर विधिपूर्वक इस कवच को यदि साधक ध्यानपूर्वक धारण करता है, तो वह तत्क्षण ही सभी पापों से मुक्त होकर भैरव-स्वरूप बन जाता है और करोड़ों कुलों का उद्धार कर देता है ।। २

इस कवच के प्रभाव से साधक गुरु-वत् सभी विद्याओं के जप करने का अधिकारी बन जाता है । इस स्तोत्र का पुरश्चरण १०८ बार के पारायण से होता है । १०८ बार इसका जप कर उतना ही होम करे । इससे साधक तीनों लोकों में गण-नाथ के समान विचरण करता है ।। ३

आठ पुष्पांजलियाँ भगवती भुवनेश्वरी को अर्पित कर मूल कवच का पाठ करने से साधक की वाणी गङ्गा की धारा के समान गद्य-पद्य-मयी होकर धारा-प्रवाह वह निकलती है ।। ४

श्री भुवनेश्वरी हृदय-स्तवः

देव्युवाच—

भगवन् ! ब्रूहि तत्-स्तोत्रं सर्व-काम-प्रसाधनम्, यस्य श्रवण-मात्रेण नान्यच्छ्रोतव्यमिष्यते ।।
यदि मेऽनुग्रहः कार्यः प्रीतिश्चापि ममोपरि । तदिदं कथय ब्रह्मन् ! विमलं यन्मही-तले ।।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि सर्व-काम-प्रसाधनम् । हृदयं भुवनेश्वर्या स्तोत्रमस्ति यशोदयम् ।।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-हृदय-स्तोत्रस्य श्रीशक्तिः ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीभुवनेश्वरी देवता । हं बीजं । ईं शक्तिः । रं कीलकं । सकल-मनो - वांच्छित-सिद्धयर्थे पाठे विनियोगः ।।

ऋष्यादि-न्यास—

श्रीशक्ति-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्रीभुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । हं बीजाय नमः गुह्ये । ईं शक्तये नमः नाभौ । रं कीलकाय नमः पादयोः । सकल-मनो-वांच्छित-सिद्धयर्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यास	अङ्ग-न्यास	कर-न्यास
ह्रीं श्रीं ऐं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
"	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
"	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
"	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
"	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
"	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

अथ ध्यानम्—ध्यायेद् ब्रह्मादिकानां कृत-जनि-जननी योगिनीं योग-योनिम् ।
देवानां जीवनायोज्ज्वलित - जय - परं ज्योतिरुग्राङ्ग-धात्रीम् ।।
शङ्खं चक्रं च बाणं धनुरपि दधतीं दोश्चतुष्काम्बुजातैः ।
मायामाद्यां विशिष्टां भव-भव-भुवनां भू-भवा भार-भूमिम् ।।

मानसोपचारैः सम्पूज्य पठेत्—

यदाज्ञया यो जगदाद्यशेषं सृजत्यजः श्रीपतिरौरसं वा ।
बिभर्ति संहन्ति भवस्तदन्ते भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ।। १ ।।
जगज्जनानन्द-करीं जयाख्यां यशस्विनीं यन्त्र-सु-यज्ञ-योनिम् ।
जितामितामित्र-कृत-प्रपञ्चां भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ।। २ ।।

हरौ प्रसुप्ते भुवन - त्रयान्ते अवातरन्नाभिज - पद्म - जन्मा ।
विधिस्ततोऽब्धे विदधार यत्-पदं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ३ ॥
न विद्यते क्वापि तु जन्म यस्या न स्थितिः सान्ततिकीह यस्याः ।
न वा निरोधेऽखिल-कर्म यस्याः भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ४ ॥
कटाक्ष-मोक्षा चरणोग्र - वित्ता निवेशितार्णाः करुणार्द्र - चित्ता ।
सु-भक्तये एति समीप्सितं या भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ५ ॥
यतो जगज्जन्म बभूव योनेस्तदेव मध्ये प्रति - पाति यां वा ।
तदत्ति यान्तेऽखिलमुग्र - काली भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ६ ॥
सुषुप्ति - काले जनमध्ययन्त्या मया जनः स्वप्नमवैति किंचित् ।
प्रबुध्यते जाग्रति जीव एष भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं तां ॥ ७ ॥
दया-स्फुरत्-कोर-कटाक्ष - लाभान्नैकत्र यस्या प्रलभन्ति सिद्धाः ।
कवित्वमीशित्वमपि स्वतन्त्रा भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं तां ॥ ८ ॥
लसन्मुखाम्भोरुहमुत्-स्फुरन्तं हृदि प्रणिध्याय दिशि स्फुरन्तः ।
यस्याः कृपार्द्रं प्रविकाशयन्ति भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं तां ॥ ९ ॥
पदानुरागानुगतालि - चित्राश्चिरन्तन - प्रेम - परिप्लुताङ्गाः ।
सु-निर्भयाः सन्ति प्रमुद्य यस्याः भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं तां ॥ १० ॥
हरिर्विरञ्चिर्हर - ईशितारः पुरोऽवतिष्ठन्ति पर - व्रताङ्गाः ।
यस्या समिच्छन्ति सदानुकूल्यं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं तां ॥ ११ ॥
मनुं यदीयं हरमग्नि-संस्थं ततश्च वाम - श्रुति - चन्द्र - सक्तम् ।
जपन्ति ये स्युः सुर - वन्दितास्ते भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं तां ॥ १२ ॥
प्रसीदतु प्रेम - रसार्द्र - चित्ता सदा हि सा श्रीभुवनेश्वरी मे ।
कृपा - कटाक्षे कुबेर - कल्पा भवन्ति यस्याः पद - भक्ति - भाजः ॥ १३ ॥
मुदा सुपाठ्यं भुवनेश्वरीयं सदा सतां स्तोत्रमिदं सु - सेव्यं ।
सुख-प्रदं स्यात् कलि - कल्मषघ्नं सु-शृण्वतां सम्पठतां प्रशस्यम् ॥ १४ ॥
एतत्तु हृदय-स्तोत्रं पठेद् यस्तु समाहितः । भवेत् तस्येष्टदा देवी प्रसन्ना भुवनेश्वरी ॥१५
ददाति धनमायुष्यं पुण्यं पुण्य-मतिं तथा । नैष्ठिकीं देव-भक्तिं च गुरु-भक्तिं विशेषतः ॥१६
पूर्णिमायां चतुर्दश्यां कुज-वारे विशेषतः । पठनीयमिदं स्तोत्रं देव-सद्मनि यत्नतः ॥१७
यत्र कुत्रापि पाठेन स्तोत्रस्यास्य फलं भवेत् । सर्व-स्थानेषु देवेश्याः पूत-देहः सदा पठेत् ॥१८
पूर्व-वत् न्यास-ध्यानादि कुर्वन् निवेद्य प्रणमेत् ।

श्रीभुवनेश्वरी-स्तवः

आद्यामशेष - जननीमरविन्द - योनेर्विष्णोः, शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम् ।
सृष्टि-स्थिति-क्षय-करीं जगतां त्रयाणां, स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके ! त्वां ।। १
पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुतां वरेण, होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्ति-भाजः ।
देवस्य मन्मथ - रिपोरपि शक्ति - मत्ता, हेतुस्त्वमेव खलु पर्वत-राज-पुत्रि ! ।। २
त्रि-स्रोतसः सकल-लोक - समर्चितताया, वैशिष्ट्य - कारणमवैमि तदेव मातः !
त्वत् - पद - पङ्कज - पराग - पवित्रतासु, शम्भोर्जटासु नियतं परिवर्तनं यत् ।। ३
आनन्दयेत् कुमुदिनीमधिपः कलानां, नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकस्य मोदन-विधौ परमेकमिष्टे, त्वं तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्व-दृष्ट्या ।। ४
आद्याऽप्यशेष - जगतां नव - यौवनाऽसि शैलाधिराज-तनयाप्यति-कोमलाऽसि ।
त्रय्याः प्रसूरपि तया न समीक्षिताऽसि, ध्येयाऽपि गौरि ! मनसो न पथि स्थिताऽसि ।। ५
आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद् दुरापं, तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणां ।
नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ! ये त्वां निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ।। ६
कर्पूर-चूर्ण-हिम-वारि - विलोडितेन, ये चन्दनेन कुसुमैश्च सु-जात-गन्धैः ।
आराधयन्ति हि भवानि ! समुत्सुकास्त्वां, ते खल्वशेष-भुवनादि-भुवं प्रथन्ते ।। ७
आविश्य मध्य-पदवीं प्रथमे सरोजे, सुप्ता हि राज-सदृशी विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लता-वलय - विभ्रममुद्वहन्ती, पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ।। ८
तन्निर्गतामृत - रसैरभिषिच्य गात्रं, मार्गेण तेन विलयं पुनरप्यवाप्ता ।
येषां हृदि स्फुरति जातु न ते, भवेयुर्मातर्महेश्वर - कुटुम्बिनि ! गर्भ-भाजः ।। ९
आलम्बि-कुन्तल - भरामभिराम - वक्त्रां, पीवर-स्तन-तटीं च तनु-वृत्त - मध्यां ।
चिन्ताक्ष-सूत्र-कलशालिखिताढ्य-हस्तां, मातर्नमामि मनसा तव गौरि ! मूर्तिम् ।।१०
आस्थाय योगमवजित्य च वैरि-षट्कमाबध्य चेन्द्रिय-गणं मनसि प्रसन्ने !
पाशांकुशाभय-वराढ्य-करां सु-वक्त्रामालोकयन्ति भुवनेश्वरि ! योगिनस्त्वाम् ।। ११
उत्तप्त - हाटक - निभा करिभिश्चतुर्भिरावर्तितामृत - घटैरभिषिच्यमाना ।
हस्त - द्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती, पद्मापि साऽभय - करा भवसि त्वमेव ।। १२

अष्टाभिरुग्र - विविधायुध - वाहिनीभिर्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजं ।
पूर्वा-दल-द्युतिरमर्त्य-विपक्ष-पक्षान्, न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि, भवानि, दुर्गे ! ।। १३

आविर्निदाघ-जल-शीकर-शोभि-वक्त्रां, गुंजा - फलेन परि-कल्पित-हार-यष्टिम् ।
रत्नांशुकामसित - कान्तिमलंकृतां त्वामाद्यां पुलिन्द-तरुणीं असकृत् स्मरामि ।।१४

हंसैर्गति - क्वणित - नूपुर-दूर - कृष्टैर्मूर्तैरिवाप्त - वचनैरनु - गम्यमानौ ।
पद्माविवोर्ध्व-मुख-रूढ़-सुजात-नालौ, श्रीकण्ठ-पत्नि ! शिरसैव दधे तवांघ्रि ।। १५

द्वाभ्यां समीक्षितुमतृप्ति - मतेन दृग्भ्यामुत्पाद्यता त्रि - नयनं वृष - केतनेन ।
सान्द्रानुराग-भवनेन निरीक्ष्य - माणे, जंघे उभेऽपि भवानि ! तवानतोऽस्मि ।। १६

ऊरुं स्मरामि शित-हस्ति - करावलेपौ, स्थौल्येन मार्दव-तया परिभूत - रम्भौ ।
श्रोणी-भरस्य सहनौ परि-कल्प्य दत्तौ, स्तम्भाविवाङ्ग - वयसा तव मध्यमेन ।। १७

श्रोण्यौ स्तनौ च युग-पत् प्रथयिष्यतोच्चैर्बाल्यात् परेण वयसा परि-हृष्ट-सारौ ।
रोमावली-विलसितेन विभाव्य मूर्ति, मध्यं तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ।। १८

सख्यः स्मरस्य हर-नेत्र - हुताश - भीरोर्लावण्य - वारि-भरितं नव-यौवनेन ।
आपाद्य - दत्तमिव पल्वलमप्रविष्टं, नाभिं कदापि तव देवि ! न विस्मरेयं ।। १९

ईशोपगूह - पिशुनं भसितं दधाने, काश्मीर - कर्दममनु - स्तन - पङ्कजे ते ।
स्नानोत्थितस्य करिणः क्षण-लक्ष-फेनौ, सिन्दूरितौ स्मरयतः स-मदस्य कुम्भौ ।। २०

कण्ठातिरिक्त-गलदुज्ज्वल-कान्ति-धारा, शोभौ भुजौ निज - रिपोर्मकर-ध्वजेन ।
कण्ठ - ग्रहाय रचितौ किल दीर्घ-पाशौ, मातर्मम स्मृति-पथं न विलङ्घयेताम् ।। २१

नात्यायतं रचित - कम्बु - विलास - चौर्यं, भूषा - भरेण विविधेन विराजमानं ।
कण्ठं मनोहर-गुणं गिरि-राज - कन्ये ! संचिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहं ।। २२

अत्यायताक्षमभिजात-ललाट - पट्टं, मन्द - स्मितेन दर-फुल्ल - कपोल-रेखं ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नत-दीर्घ - नासं, यत्ते स्मरत्यसकृदम्ब ! स एव जातः ।। २३

आविस्तुषार - कर - लेखमनल्प - गन्ध - पुष्पोपरि भ्रमदलि व्रज निर्विशेषं ।
यश्चेतसा कलयते तव केश-पाशं, तस्य स्वयं गलति देवि ! पुराण-पाशः ।। २४

श्रुति-सुरचित-पाकं श्रीमतां स्तोत्रमेतत्, पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पाद-नम्रः, क्षितिप-मुकुट-लक्ष्मी-लक्षणानां चिराय ।। २५

हिन्दी रूपान्तर

श्री भुवनेश्वरी-स्तवः

हे मा ! आप श्री विश्वाद्या हो, अखिल ब्रह्माण्ड की जननी हो; ब्रह्मा, विष्णु, शिव की माता तथा अखिल विश्व को सृष्ट करनेवाली, पोषण देनेवाली तथा लय करनेवाली हो। आप श्री के स्तवन से मेरी वाक्य-रचना (वाणी) पवित्र हो [१]। हे मा, पार्वति ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यजमान, सोम तथा सूर्य में जो महा-शिव व्यापक हैं तथा जो मदन को दहन करनेवाले हैं, उन महा-प्रभु शिव की भी त्रैलोक्य-संहार-शक्ति आपसे ही उत्पन्न हुई है [२]। हे मा ! आप श्री की पवित्र चरण-रज से पवित्र हुई शिव के शिर की जटा में तीन स्रोतवाली त्रिधार श्री भागीरथी गङ्गा विश्व-पूज्या हैं तथा इसी कारण उनका प्राधान्य है [३]। हे मा, हे विश्व-जननि ! चन्द्र से एकमात्र कुमुदिनी ही खिलती है। सूर्य से एकमात्र कमल का ही आनन्द बढ़ता है, अन्य का नहीं। इस प्रकार एक-एक वस्तु के सुखार्थ एक-एक पदार्थ ही निर्दिष्ट हुआ है, परन्तु आप श्री तो सारे विश्व को श्री-दृष्टि से आनन्द देनेवाली हो [४]। हे मा ! विश्व में आप श्री सर्वादि-भूता होकर भी निरन्तर नव-यौवना रहती हो। आप श्री अत्यन्त कठिन पर्वत-राज की पुत्री होने पर भी अत्यन्त सु-कोमला हो। वेद आदि सद्-ग्रन्थ आप श्री से उत्पन्न होकर भी आप श्री के अनन्त गुण-कथन में असमर्थ हैं। आप श्री ध्यानगम्य होकर भी किसी के मन में स्थिर नहीं होती हो [५]।

हे मा ! जो व्यक्ति दुर्लभ नर-जन्म में बुद्धि आदि दिव्य इन्द्रियों की सहायता पाकर भी आपकी आराधना नहीं करते, वे मुक्ति की सीढ़ी पर चढ़कर भी पुनः गिरते हैं [६]। हे मा, हे भवानि ! जो व्यक्ति कर्पूर-चूर्ण विलोडित (मिले हुए) शीतल जल से घर्षित (घिसे हुए) चन्दन तथा सुगन्ध-युक्त पुष्पों से उत्सुक-चित्त से आप श्री की आराधना करते हैं, वे सर्व-भुवनों के अधिपति होते हैं [७]। हे मा, हे जननि ! आप श्री मूलाधार चक्र में सर्वाकारा श्री कुण्डलिनी रूप से स्थित होकर सारे विश्व को उत्पन्न करती हो तथा मूलाधार से ऊर्ध्व में स्थित पञ्च-पद्मों को बिजली की रेखा के समान भेदकर सहस्रार-स्थित परम शिव से सङ्ग करती हो (यह विद्युल्लता श्री कुण्डलिनी अभ्यास से जागृत होती है) [८]। हे महेश्वर-कुटुम्बिनि, हे मा ! आप श्री सहस्रार-निर्गत सुधा-पीयूष-रस से स्वदेह को स्नान कर सुषुम्ना-मार्ग में फिर प्राप्त हो पुनः आधार-चक्र में विश्राम करती हो। जिस साधक के हृत्कमल में आप श्री के इस रूप का भावोदय नहीं होता, वह बारम्बार (जन्म-मरणादि) गर्भ-वास भोगता है [९]। हे मा ! आप श्री के लम्बे केश हैं। आप श्री का मुख अत्यन्त मनोहर है। आप श्री पीन-स्तना हो। आप श्री की पतली कमर है तथा आप श्री की चार भुजाओं में ज्ञान-मुद्रा, जप-माला, कलश तथा पुस्तक विराजमान है। हे मा ! आप श्री की ऐसी छटा को नमस्कार है [१०]।

हे मा, हे विश्वेशि ! योगि-जन योगाभ्यास से काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सरादि को विजय कर इन्द्रिय-निरोध-द्वारा प्रफुल्लित चित्त से प्राण-परा पाशांकुश-वराभय हाथवाली आप श्री का दर्शन करते हैं [११]। हे मा ! प्रतप्त सुवर्ण वर्णवाली, चार हाथियों द्वारा जल-पूरित घटाभिषिक्ता, दो हाथों में पद्म तथा दो हाथों में वराभय-युक्ता श्री महा-लक्ष्मी आप ही हो [१२]। हे मा, हे भवानि ! श्रीसिंह-वाहना, नाना अस्त्र-धारिणी, अष्ट-भुजा, दूर्वा-दल-द्युति, सुरासुर-विजया, श्रीदुर्गा-रूप-धारिणी आप ही हो [१३]। हे मा ! प्रस्वेद-बुन्द-सुशोभित मुख-कमलवाली गुञ्जा-फल-निर्मित हार-यष्टि धारण किये हुये;

रत्नांशुका, रत्न-वसना, कृष्ण-कान्तियुता, श्रीअनङ्गवशी (काम को वशमें करनेवाली) आप श्री का मैं सदा स्मरण करता हूँ [१४]। हे मा, हे नील-कण्ठे ! जिस प्रकार हंस नूपुर-ध्वनि से ग्राकर्षित होते हैं, उसी प्रकार वेद आप श्री के चरण-कमलों का अनुगमन करते हैं। ग्राप श्री के चरण-कमल ऊर्ध्व-मुख नील-कमल-वत् ग्रत्यन्त शोभा पा रहे हैं। मैं आपके उन्हीं दोनों चरण-कमलों को अपने मस्तक पर धारण करता हूँ [१५]।

हे मा, हे भवानि ! विश्वनाथ वृषभ-ध्वज श्रीमहा-शिवजी दो नेत्रों से आप श्री के दर्शन कर तृप्त न हुए। अतः तीसरे नेत्र को उत्पन्न कर गाढ़ानुराग-सहित आप श्री की जंघा का उन्होंने दर्शन किया। आप श्री की उन जङ्घाओं को प्रणाम है, वारम्बार प्रणाम है [१६]। हे मा ! आप श्री की ऊरु हस्ति-शुण्ड-गर्व-खर्वा है; स्थूलता, आर्द्रता एवं कोमलता में केले के स्तम्भ को विजय करनेवाली है। आप श्री के देह के मध्य देश का भाग ग्राप श्री के नितम्बों ने हरण कर लिया हो, ऐसा प्रतीत होता है अर्थात् मध्य देश ने ही स्तम्भ-रूप में आप श्री के नितम्ब जङ्घादि निर्मित किये हों, ऐसा भासता है [१७]। हे मा ! ग्राप श्री के मध्य देश से मानो आप श्री के नितम्ब, तथा स्तन-मण्डल दोनों ने उच्चता तथा स्व-विस्तार के लिए सार खींच लिया है। अतः ग्राप श्री का मध्य-देश क्षीण हो गया है। आप श्री का यह मध्य देश मेरे हृदय में स्फुरित हो [१८]। हे मा, हे जननि ! श्री भगवान् महा-शिव के तृतीय नेत्राग्नि से भय को प्राप्त हुए श्री मदन के रक्षार्थ श्रीमदन-प्रिया रति ने स्व-लावण्य-जल-भरित सरोवर-वत् आप श्री की नाभि का निर्माण किया हो, ऐसा प्रतीत होता है। आप श्री की इस नाभि को मैं कभी न भूलूँ [१९]। हे मा, हे जननि ! ग्राप श्री के दोनों कुच-कमलों में भस्म लगी हुई है (इससे श्री भगवान् शिव ने ग्राप श्री का आलिंगन किया हो, ऐसा भासता है) तथा आप श्री के स्तन-युगल केसर-पद्म-मूलादि से अनुलिप्त हैं। स्नान कर निकले हुए मद-युक्त हाथी के क्षण मात्र फेन-लक्षित सिन्दूरवाले गण्ड-स्थल के समान ग्राप श्री के कुच-युगल शोभा पा रहे हैं [२०]।

हे मा ! कण्ठ-पार्श्व में उत्तम कान्ति-धारा-सम शोभती आप श्री की दोनों भुजाएँ इस प्रकार शोभा दे रही हैं, मानो श्री मदन ने ग्रपने शत्रु श्री शिव का कण्ठ-ग्रहण करने के लिये लम्बा पाश बनाया हो। हे मा ! आप श्री की इन दोनों भुजाओं का मेरे चित्त में सदैव स्मरण रहे [२१]। हे मा, हे गिरि-कन्ये ! ग्राप श्री की मनोहर कम्बु-ग्रीवा को; जो अति दीर्घ नहीं है, जिसमें अनेक प्रकार के आभूषण विद्यमान हैं तथा जिसमें अनेक मनोहर गुण भरे हुए हैं, स्मरण करता हुआ मेरा मन कभी तृप्त न हो [२२]। हे मा, हे विश्व-जननि ! आप श्री के आकर्ण खिंचे हुए ग्रति दीर्घ नेत्र हैं, परम मनोहर विशाल भाल है, स्मित हास्य से कपोल प्रफुल्लित दीखते हैं, बिम्बा-फल-वत् लाल ग्रधर हैं, उठी हुई दीर्घ नासिका है। जो पुरुष ग्राप श्री के दिव्य मुख-पद्म का स्मरण करते हैं, उन्हीं का जन्म सफल है [२३]। हे देवि, हे मा ! आप श्री के केश-पाश भाल-चन्द्रिका से प्रकाशित हो रहे हैं, स्वल्प-सुगन्धित फल गुञ्जित भ्रमर-वत् हो रहे हैं (रत्यन्ते)। जो आप श्री के केशों का इस प्रकार चिन्तन करता है, वह जगज्जाल से छूट जाता है [२४]। आर्द्र-चित्त से स्तोत्र पाठ करने से सम्पत्ति का आधार बनता है तथा उसके चरणों में राज-पुरुष भी झुकते हैं [२५]।

भगवती भुवनेश्वरी स्तुति-रत्नम्

प्रसीद प्रपञ्च - स्वरूपे प्रधाने, प्रकृत्यात्मिके प्राणिनां प्राण-संज्ञे !
प्रणन्तुं प्रभो प्रारभे प्राञ्जलिस्त्वां, प्रकृत्याऽप्रतर्क्ये प्रकाम-प्रवृत्ते ।। १

स्तुतिर्वाक्य-बद्धा पदात्मैव वाक्यं, पदं त्वक्षरात्माऽक्षरं त्वं महेशि !
ध्रुवं त्वां त्वमेवाक्षरैस्त्वन्मयैस्तोष्यसि त्वन्मयी वाक्-प्रवृत्तिर्यतः स्यात् ।। २

अजाऽधोक्षज-त्रीक्षणाश्चापि रूपं, परं नाभिजानन्ति माया-मयं ते ।
स्तुवन्तीशि तां त्वाममी स्थूल-रूपां, तदेतावदेवाम्ब ! युक्तं ममापि ।। ३

नमस्ते समस्तेशि विन्दु-स्वरूपे, नमस्ते परत्वेन तत्त्वाभिधाने ।
नमस्ते महत्त्वं प्रपन्ने प्रधाने, नमस्ते त्वहङ्कार - तत्त्व-स्वरूपे ।। ४

नमः शब्द-रूपे नमो व्योम-रूपे, नमः स्पर्श-रूपे नमो वायु-रूपे ।
नमो रूप-तेजो-रसाऽम्भः-स्वरूपे, नमस्तेऽस्तु गन्धात्मिके भू-स्वरूपे ।।५

नमः श्रोत्र-चर्माक्षि-जिह्वाख्य-नासाऽऽस्य-वाक्-पाणि-पत्पायु-सोपस्थ-रूपे ।
मनो-बुद्ध्यहङ्कार - चित्त-स्वरूपे, विरूपे नमस्ते विभो विश्व-रूपे ।। ६

रवित्वेन भूत्वाऽन्तरात्मा दधासि, प्रजाश्चन्द्रमस्त्वेन पुष्णासि भूयः ।
दहस्यग्नि - मूर्ति वहन्त्याहुतिं वा, महा-देवि ! तेजस्त्रयं त्वत्त एव ।। ७

चतुर्वक्त्र-युक्ता लसद्धंसवाहा, रजः-संश्रिता ब्रह्म - संज्ञां दधाना ।
जगत्-सृष्टि-कार्या जगन्मातृ-भूते, परे त्वत्-पदं ध्यायसीशि ! त्वमेव ।।८

विराजत्-किरीटा लसच्चक्र-शङ्खा, वहन्ती च नारायणाख्यां जगत्सु ।
गुणं सत्वमास्थाय विश्व-स्थितिं यः, करोतीह सोंऽशोऽपि देवि ! त्वमेव ।।९

जटाबद्ध-चन्द्राहि-गंगा त्रिनेत्रा, जगत् संहरन्ती च कल्पावसाने ।
तमः-संश्रिता रुद्र-संज्ञां दधाना, वहन्ती परश्वक्ष - माले विभासि ।। १०

सुचिन्ताऽक्ष-माला सुधा-कुम्भ-लेखाधरा त्रीक्षणार्धेन्दु-राजत्-कपर्दा ।
सु-शुक्लांशुकाकल्प - देहा सरस्वत्यपि त्वन्मयैवेशि ! वाचामधीशा ।।११

लसच्छङ्ख-चक्रा चलत्-खड्ग-भीमा, नदत्-सिंह-वाहा ज्वलत्-तुङ्ग-मौलिः ।
द्रवद्-दैत्य-वर्गा स्तुवत्-सिद्ध-संघा, त्वमेवेशि ! दुर्गाऽपि सर्गादि-हीने ।। १२

पुराऽराति-देहार्ध-भागा भवानी, गिरीन्द्रात्मजात्वेन यैषा विभाति ।
महा-योगि-वन्द्या महेशा सु-नाथा, महेश्यम्बिका तत्त्वतस्त्वन्मयैव ।। १३
लसत्-कौस्तुभोद्भासिते व्योम-नीले, वसन्तीं च वक्षः-स्थले कैटभारेः ।
जगद्-वल्लभां सर्व-लोकैक-नाथां, श्रियं तां महा-देव्यहं त्वामवैमि ।। १४
अजाऽद्रीड्-गुहाब्जाक्ष-योगीन्द्रकाणां, महाभैरवस्यापि चिह्नं वहन्त्यः ।
विभो मातरः सप्त तद्-रूप-रूपाः, स्फुरन्त्यस्त्वदंशा महा-देवि ! ताश्च ।। १५
समुद्यद्-दिवा-कृत्-सहस्राभ-भासा, सदा सन्तताशेष-विश्वावकाशे ।
लसन्मौलि - बद्धेन्दु-लेखे स-पाशांकुशाभीत्यभीष्टात्त-हस्ते ! नमस्ते ।। १६
प्रभा कीर्ति-कान्ती दिवा-रात्रि-सन्ध्याः, क्रियाशा तमिस्रा क्षुधा-बुद्धि-मेधाः ।
धृतिर्वाङ्-मतिः सन्नतिः श्रीश्च भक्तिस्त्वमेवेशि ! येऽन्ये च शक्ति-प्रभेदाः ।। १७
हरे ! विन्दु-नादैः सशक्त्याख्य-शान्तैर्नमस्तेऽस्तु भेद-प्रभिन्नैरभिन्ने ।
सदा सप्त-पाताल-लोकाचलाब्धि - ग्रह - द्वीप-धातु-स्वरादि-स्वरूपे ।। १८
नमस्ते समस्ते ! समस्त-स्वरूपे ! समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूत-शक्ते ।
श्रित-स्थूल-सूक्ष्म-स्वरूपे महेशि ! स्मृते बोध - रूपेऽप्यबोध-स्वरूपे ।। १९
मनो-वृत्तिरस्तु स्मृतिस्ते समस्ता, तथा वाक्-प्रवृत्तिः स्तुतिः स्यान्महेशि !
शरीर-प्रवृत्तिः प्रणाम-क्रिया स्यात्, प्रसीद क्षमस्व प्रभो ! सन्ततं मे ।। २०

फल-श्रुति

हृल्लेखा-जप - विधिमर्चना-विशेषानेतांस्तां स्तुतिमपि नित्यमादरेण ।
योऽभ्यस्येत् स खलु परां श्रियं च गत्वा शुद्धं तद् व्रजति पदं परस्य धाम्नः ।। १
इति हृल्लेखा - विहितो विधिरुक्तः संग्रहेण सकलोऽयं,
योऽस्मिन् नियत - मना मन्त्री योगी स्यात् स एव भोगी च ।। २

भगवती भुवनेश्वरी स्तुति-रत्नम्

हे भगवती भुवनेश्वरि ! इस संसार में जितना जो कुछ प्रपञ्च है, यह सब तुम्हारा ही स्वरूप है अर्थात् यह सब तुमसे ही पैदा हुआ है । केवल यह संसार ही नहीं वरन् तीनों तथा चौदह भुवनों को तुमने ही पैदा किया है, अतएव तुम (भुवनानां ईश्वरी) चौदह भुवनों की (लोकों की) स्वामिनी मानी जाती हो ।

प्रधान और प्रकृति तुम्हारे ही नाम हैं । अर्थात् प्रकृति किसी तत्व का विकार या कार्य न होने से केवल प्रकृति, मूल प्रकृति या प्रधान नाम से तुम्हीं कही जाती हो । सत्व-गुण, रजागुण और तमोगुण की साम्यावस्था (समान-रूपता) का नाम प्रकृति अथवा प्रधान है । सांख्य शास्त्र कहता है—'सत्व-रज-स्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ।' अर्थात् पुरुष को भोग तथा कैवल्य (मोक्ष) प्रदान करने के लिए तुम्हीं (प्रकृति) जगत् की रचना करती हो ।

संसार में जितने भी प्राण धारण करनेवाले प्राणी (जीव) हैं, उनके शरीर के भीतर प्राण-शक्ति रूप से तुम्हीं विद्यमान रहती हो अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों में तुम्हीं प्राण-रूप से स्थित हो । अतएव तुम प्राण-संज्ञिका हो अर्थात् प्राण तुम्हारा ही नाम है (प्राणिनां प्राण-संज्ञे) । अतएव हे स्वामिनि, तुम्हारे सामने अञ्जलि बाँधकर मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ तथा तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।

यद्यपि तुम स्वभाव से ही अप्रतर्क्य हो अर्थात् तुम्हारे स्वभाव के विषय में किसी प्रकार का तर्क-वितर्क करना (तुम ऐसी हो, तुम वैसी हो) उपासक भक्त की शक्ति से बाहर है, अतएव क्षमा माँग कर, प्रणाम कर, मैं स्तुति करता हूँ ।

'प्रधाने'—प्रधान का अर्थ प्रमुख, मुख्य, सबसे श्रेष्ठ भी होता है, अतएव प्रधान मन्त्री कहा जाता है । अतएव सब देवताओं में और सब महा-विद्याओं में तुम श्रेष्ठ हो । 'प्रधान' का अर्थ परमात्मा भी होता है, अतः हे परमात्मा-स्वरूपिणि तथा प्रकृत्यात्मिके, प्रकृति-स्वरूपिणि !

'योनौ लिङ्गे च प्रकृतिः'—इस कोष-वचन के अनुसार योनि-स्वरूपिणि ! योनि का अर्थ त्रिकोण है । अर्थात् हे त्रिकोण-रूपिणि !

भुवनेश्वरी-यन्त्र में एक अधो-मुख त्रिकोण और दूसरा ऊर्ध्व-मुख त्रिकोण है । दोनों मिलाकर षट्-कोण यन्त्र बनता है । इससे अर्ध-नारीश्वर-रूपिणि' अर्थ भी होता है । तुम्हारा आचरण स्वतन्त्र है अर्थात् तुम किसी के अधीन नहीं हो, वरन् अन्य सभी तुम्हारे अधीन हैं—।। १ ।।

भगवती भुवनेश्वरी का भक्त कहता है कि हे मातः, तुम्हारी स्तुति गद्य अथवा पद्य के रूप में की जानी चाहिए ।

गद्य अथवा पद्य वाक्यों का एक समूह है अर्थात् एक गद्य-खण्ड अथवा एक पद्य (श्लोक अथवा एक पद, छन्द अथवा एक भजन) वाक्यों का एक समूह है । यह वाक्य पदों का (संज्ञा और क्रिया का) समूह है । पद (संज्ञा और क्रिया, सुवन्त और तिङ्न्त) अक्षरों से बनता है अर्थात् इच्छानुसार अर्थ को प्रकट करनेवाले अक्षरों को जोड़कर अभीष्ट शब्द या पद बनाया जाता है ।

उपासक कहता है कि पद बनाने के लिए अक्षर कहाँ से आवे ? क्योंकि अक्षर तो तुम स्वयं ही हो अर्थात् तुम स्वयं अक्षर-स्वरूपिणी हो ।

'अक्षर' का अर्थ है कभी नाश न होना । 'अक्षरं न क्षरं विद्यात्' अर्थात् अक्षर कभी नष्ट नहीं

होता। यदि आप 'अ' अक्षर को लिख कर पुनः स्वयं मिटा दें, तो आपका लिखा हुआ 'अ' अक्षर मिट जायगा किन्तु उसकी संज्ञा (नाम) अकार तो संसार में रहती ही है, अतएव कहा ही है कि अक्षर कभी नष्ट नहीं होता।

भगवती के श्रीललिता-सहस्रनाम में एक नाम 'मातृका-वर्ण-रूपिणी' है अर्थात् भगवती मातृकाक्षर-स्वरूपिणी है, याने मातृका के ५१ एक-पञ्चाशत् अक्षर अ, आ से लेकर क्षकार-पर्यन्त भगवती-स्वरूप हैं। दूसरा नाम भगवती का है—'भाषा-रूपा' अर्थात् भाषा (बोली) जिसका रूप है। चाहे कोई भी भाषा हो, वह अक्षर, शब्द, पद और वाक्यों से ही बनती है। ऐसी परिस्थिति में उपासक कहता है कि यह निश्चित है कि तुम स्वयं स्व-शरीर-मय अक्षरों से स्वयं अपनी स्तुति करती हो अर्थात् तुम 'एकाक्षरेति विख्याता सर्वाक्षर-मयी शुभा'—स्वयं अक्षर-रूपिणी हो।

अतः अक्षरों से ही तुम्हारी स्तुति करनी है। इसी भाव को श्री भगवान् शङ्कराचार्य ने अपनी बनायी हुई 'सौन्दर्य-लहरी' नाम की श्री जगदम्बा-स्तुति के अन्त में प्रकट किया है—'त्वदीयाभिर्नाभिस्तव जननि! वाचां स्तुतिरियम्' अर्थात् हे माता! तुमसे उत्पन्न तुम्हारे स्वरूप-वाली तुम्हारी वाणी से ही तुम्हारी स्तुति मैंने की है। एवमेव वैष्णवोपासना में भी—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये' यह भाव दिखाया गया है।

श्रीभुवनेश्वरी-उपासक भगवती के ही अक्षरों से भगवती की स्तुति करने का कारण दर्शाता है कि—हे जगदम्बिके! तुम्हारी आकृति-रूप अक्षरों से बनी हुई इस वाणी-रूपिणी स्तुति करने का प्रवाह संसार में फैले अर्थात् संसार में तुम्हारा भक्त-वृन्द इस स्तुति से परिचित होकर लाभान्वित होवे, अतएव मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

कवि ने अपनी स्तुति में—'अक्षरं त्वं महेशि!' जो लिखा है, वह वामकेश्वर तन्त्र के आधार पर लिखा है। वामकेश्वर तन्त्र के अन्तर्गत 'नित्या षोडशिकार्णव' है, जिसमें भगवती श्री राज-राजेश्वरी की षोडश नित्याओं का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। उसमें सबसे पहले द्वादश श्लोकों में श्री महा-त्रिपुर-सुन्दरी का मङ्गलाचरण-रूप में वर्णन किया गया है। उसी मङ्गलाचरण का सप्तम पद्य इस प्रकार है—

अकचादि-टतोन्नद्ध-पयसाक्षर-वर्गिणीम्! ज्येष्ठाङ्ग-बाहु-पादाग्र-मध्य-स्वान्त-निवासिनीम्॥

अर्थात् 'अ' से लेकर 'अं, अः' तक षोडश स्वरों को अवर्ग में गिनाया गया है, अतः प्रथम 'अ-वर्ग' सोलह स्वरों का है। द्वितीय-वर्ग 'क' से लेकर 'ङ' तक 'क-वर्ग', 'च' से लेकर 'ञ' तक तीसरा वर्ग 'च-वर्ग' हुआ, 'ट' से लेकर 'ण' पर्यन्त 'ट-वर्ग' चौथा वर्ग हुआ, तो 'त' से लेकर 'न' पर्यन्त 'त-वर्ग' पाँचवाँ वर्ग हुआ, 'प' से लेकर 'म' पर्यन्त 'प-वर्ग' छठा वर्ग हुआ, 'य' से लेकर 'व' पर्यन्त चार अक्षरों का 'य-वर्ग' सातवाँ वर्ग हुआ, 'श' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त ६ अक्षरों का आठवाँ 'श-वर्ग' हुआ। इस प्रकार ऊपर लिखित श्लोक की प्रथम पंक्ति का अर्थ है, जिसमें 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त समस्त मातृकाक्षर आठ वर्गों (समूहों) में बाँटे गये हैं।

अब श्लोक की दूसरी पंक्ति का अर्थ पढ़िये और समझिये। उपर्युक्त मातृका के आठ वर्ग भगवती के शरीर में बाँटे गए हैं अर्थात् ये मातृकायें भगवती के अङ्ग हैं। शरीर तीन मुख्य भागों में बाँटा गया है—

प्रथम भाग सिर से लेकर कण्ठ-पर्यन्त माना गया है। इसी को ज्येष्ठाङ्ग कहते हैं, ज्येष्ठ का अर्थ श्रेष्ठ है। यह शरीर का सबसे श्रेष्ठ भाग है। इसीलिये इसको ज्येष्ठाङ्ग कहते हैं।

द्वितीय भाग कण्ठ से लेकर स्तन-पर्यन्त माना जाता है। यह शरीर का मध्य भाग कहलाता है।

तृतीय भाग हृदय से लेकर सीवनी-पर्यन्त माना जाता है। इस भाग को ऊपर के श्लोक में 'अग्र' शब्द से कहा है और 'मध्य' शब्द से मध्य शरीर का भाग लिया है। 'स्वान्त' का अर्थ हृदय है।

शरीर के ये ही तीन भाग मुख्य हैं। केश जो सिर पर होते हैं, वे सिर की शाखायें हैं; अर्थात् ज्येष्ठाङ्ग सिर के साथ उनकी गणना होती है। दोनों हाथ शरीर के मध्य भाग की शाखायें हैं, अतः उनकी गणना शरीर के मध्य भाग में होती है। दोनों पैरों की गणना शरीर के अग्र भाग (तीसरा भाग) में की गयी है, अतः दोनों पैर उसकी शाखायें हैं।

बहिर्मातृका-न्यास में षोडश स्वरों का न्यास ज्येष्ठाङ्ग (सिर) में अर्थात् सिर के अङ्गों में किया जाता है। "अं नमः शिरसि, आं नमः मुख-वृत्ते" इत्यादि। एवं 'क-वर्ग' का दक्षिण-भुजा में, 'च-वर्ग' का वाम-भुजा में आदि-आदि न्यास किये जाते हैं। यहाँ पर केवल 'अक्षरं त्वं महेशि' की ही व्याख्या से तात्पर्य है, उसी को दिखाया गया है। न्यास की आवश्यकता नहीं है।

ऊपर लिखित पद्य की व्याख्या में श्री भास्कर राय भारती लिखते हैं—"अत्र श्लोके मातृका-देवतयोरन्योन्यमभेदो वर्णितः" अर्थात् इस श्लोक में मातृकाक्षर और भगवती की एक-रूपता दिखाई गई है याने दोनों एक ही हैं। अतएव इस स्तुति में "अक्षरं त्वं महेशि" कहकर मातृका और भुवनेश्वरी की एकता (अभेद) दिखाई गई है ॥ २ ॥

श्री भगवती भुवनेश्वरी का उपासक भक्त भगवती से प्रार्थना करता है कि हे मातः! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी तुम्हारी माया से कल्पित तुम्हारे परम रूप को जानने में असमर्थ होकर केवल तुम्हारे स्थूल रूप की ही स्तुति करने में समर्थ होकर तुम्हारे स्थूल रूप की स्तुति करते हैं, अतएव मेरे लिये भी यही योग्य है कि मैं तुम्हारे स्थूल रूप की स्तुति करूँ, अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

भगवान् श्रीयोगेन्द्र कृष्ण ने गीता में स्वयं श्री-मुख से कहा है कि—जो मेरा भक्त श्रद्धा-पूर्वक मेरे सगुण-निर्गुण, सकल-निष्कल, स्थूल-सूक्ष्म—शिव, विष्णु, दुर्गा आदि रूपों में से किसी भी रूप की पूजा करता है, मैं उसी रूप में उसकी श्रद्धा को अटल कर देता हूँ और तदनुसार फल प्रदान करता हूँ।

कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी मेरे माया-मय परम रूप को नहीं जानते।

वेद में लिखा है कि ब्रह्म 'पर' और 'अपर' भेद से दो प्रकार का है। पर-ब्रह्म को निष्कल तथा अपर ब्रह्म को सकल ब्रह्म भी कहते हैं। सकल ब्रह्म भी जगन्नियामक (जगत् का नियन्त्रण करने-वाला) और जगदात्मक रूप से दो प्रकार का है। अर्थात् एक तो जगत् का नियन्त्रण करता है और दूसरा जगत् का स्वरूप है याने यह जगत् (संसार) ब्रह्म का ही रूप है। अतएव लिखा है—'जगन्नियन्ता जगदा-त्मकश्च।'

और भी कहा गया है—

'शिवः कर्ता, शिवो भोक्ता, शिवः सर्वमिदं जगत्। देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत् ॥'

अर्थात् इस जगत् का कर्ता और भोक्ता शिव है तथा यह संसार भी शिव-रूप है। तथा देवी ही जगत् की दात्री और भोगनेवाली है और यह जगत् भी देवी-रूप है। अतएव और भी कहा है—'यद् यद्

हि दृश्यं खलु सैव दुर्गा-स्वरूपादपरं न किञ्चित्' अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी देखा जा रहा है, वह सब दुर्गा-स्वरूप है। अन्यत्र भी लिखा है—'स्थिति-संयम-कर्ता च जगतोऽस्य जगच्च सः' अर्थात् वह जगत् की स्थिति और संयम-कर्ता भी है तथा यह जगत् भी वही है।

ऊपर के प्रमाण से यह विदित हुआ कि ब्रह्म का एक प्रकार तो जगत् का नियन्ता है और दूसरा जगदात्मक (जगत् ही ब्रह्म) यह सारा जगत् ब्रह्म है। अब जब जगत् को भी ब्रह्म माना, तो जगत् के चर-अचर (स्थावर और जङ्गम) भेद से दो रूप (भेद) हुये। जगदात्मक ब्रह्म के चराचर दो भेद हो गये। द्विविध होने पर भी चर ब्रह्म, व्यष्टि-भूत स्थूल, सूक्ष्म और कारण-उपाधियों से युक्त होकर विश्व, तैजस् और प्राज्ञ पद से अभिहित होता है। तथा समष्टि-भूत स्थूल, सूक्ष्म और कारण उपाधियों से युक्त होकर वैश्वानर, हिरण्य-गर्भ और ईश्वर शब्दों (उपाधि) से व्यवहृत होता है। इस प्रकार के भेदों से तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी आदि पञ्च-तत्वों के भेद से बहुत प्रकार का है।

जगन्नियामक ब्रह्म भी नियमन के सृष्टि, स्थिति, लय (संहार), तिरोधान (बन्ध), अनुग्रह (मोक्ष) आदि भेदों से तथा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। इन भेदों में भी एक-एक भक्त के ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से उसकी वासनाओं के अनुसार तथा कार्य-भेद के अनुसार प्रत्येक देवता को भक्त की अभिलाषा के अनुसार अनेक रूप धारण करने पर एक देवता के रूपों की गणना का अनन्त हिसाब हो जाता है। अतएव कहा भी है—

'यतीनां मन्त्रिणां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा। ध्यान-पूजा-निमित्तं हि तनूर्गृह्णाति मायया॥'

अर्थात् यति, मन्त्री, ज्ञानी और योगी पुरुषों के ध्यान और पूजा के निमित्त ही वह पर-ब्रह्म अपनी माया-शक्ति द्वारा शरीर धारण करता है।

कालिका पुराण में भी लिखा हुआ है कि एक ही माया कार्य के अनुसार भिन्न रूपों को धारण करती है और कभी कमला बनती है, कभी सरस्वती, कभी सावित्री और कभी सन्ध्या बन जाती है। यथा—

'मायैका भिन्न-रूपेण कमलाख्या सरस्वती। सावित्री सा च सन्ध्या च भूता कार्यस्य भेदतः॥'

बृहन्नारदीय पुराण में भी इसी प्रकार लिखा है कि जगत् की कर्त्री शक्ति ही है। कोई उसे उमा, कोई लक्ष्मी, कोई भारती, दूसरे गिरिजा, अम्बिका, दुर्गा, भद्र-काली, चण्डी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ब्राह्मी, विद्या, माया और कोई उसे परा प्रकृति कहते हैं, सभी ऋषि-महर्षि उसे अपनी-अपनी मति के अनुसार तथा उसके कार्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न नामों द्वारा पुकारते हैं।

इसी शक्ति के विषय में श्रुति (वेद) भी कहती है—"एकधा बहुधा चैव दृश्यते जल-चन्द्र-वत्।" अर्थात् वही एक महा-माया शक्ति जल में चन्द्रमा के समान अनेक रूपोंवाली दिखायी देती है। जिस प्रकार समुद्र, नदी, तालाब, झील, बावड़ी और कूप आदि अनेक जलाशयों में चन्द्रमा के अनेक अर्थात् रूप (प्रतिबिम्ब) दिखाई देते हैं, उसी प्रकार एक शक्ति-ब्रह्म के कार्य-भेद से अनेक रूप दिखाये गये हैं।

इस महा-माया शक्ति के विषय में देवी पुराण में भी कहा गया है कि—देवी का यह परमार्थ सिद्धान्त है कि वही (देवी) चारों वेद, यज्ञ, स्वर्ग, सम्पूर्ण जगत्, यह विश्व, यह स्थावर-जङ्गमात्मक (जड़ और चेतन) जगत् तथा सर्वत्र वही जगदम्बिका सब जगह सबमें व्याप्त हो रही है। देवता लोग उसी की पूजा और उसी का याग करते हैं। वही अन्नात्मिका और वही जलात्मिका भी है। पृथ्वी में, वायु और आकाश में तथा अग्नि और जल में सर्वत्र वही भगवती व्याप्त है। जैसा कि लिखा है—

'देव्या वा एष सिद्धान्तः परमार्थो महा-मते ! एषा वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्च सकलं जगत् । देव्या व्याप्तमिदं विश्वं जगत् स्थावर-जङ्गमम् ॥'

पहले ब्रह्म के सकल और निष्कल दो भेद दर्शाये गये हैं। उनमें से अब तक सकल ब्रह्म के सब भेद ऊपर लिखे गये हैं। अब निष्कल (निर्गुण) ब्रह्म केवल एक ही प्रकार का है, अर्थात् एक ही है।

इसके विषय में कूर्म पुराण में हिमवान् (हिमालय पर्वत) के पास देवी स्वयं कहती हैं कि मेरा निष्कल रूप जो कि निर्गुण ब्रह्म है, वह केवल चिन्मात्र, शिव और सब प्रकार की उपाधियों से रहित एक परम अमृत है, और वह केवल एकमात्र ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है। यथा—

'यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवं । सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तमेकमेवाऽमृतं परं ॥ ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम् ॥'

भगवती आगे कहती हैं कि यदि तुम मेरे निष्कल रूप का ध्यान नहीं कर सकते, तो मेरे सकल-ब्रह्म-रूपों में जो रूप तुम्हारे मन को अच्छा लगे, उसी रूप में निष्ठा रखकर तथा उसमें तत्पर होकर उसकी उपासना करो। यथा—

'यदेव रूपं मे तात ! मनसो गोचरस्तव । तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चन-परो भव ।'

प्रस्तुत स्तुति के प्रारम्भ में ही लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी तुम्हारे स्थूल रूप की ही स्तुति करते हैं, क्योंकि वे तुम्हारे माया-मय परम रूप को नहीं जानते हैं। अतएव उनकी स्तुति का नमूना पाठकों को दिखाते हैं—

ब्रह्मा श्री भगवती के द्वैताऽद्वैत विषय में मुग्ध होकर प्रार्थना करते हैं कि हे शक्ति-ब्रह्म ! कृपा कर बताओ कि तुम पुरुष हो अथवा स्त्री ? तुम्हारी अपार शक्ति को जानकर मैं भव-सागर से पार हो जाऊँगा। यथा—

'पुमानसि त्वं स्त्री वाऽसि वद विस्मरतो मम । ज्ञात्वाऽहं परमां शक्ति मुक्तः स्यां भव-सागरात् ॥'

मधु और कैटभ नाम के दैत्यों के विनाश के लिये भगवान् विष्णु भगवती की स्तुति करते हैं कि हे भगवति ! तुम अपने मन में सदा ऐसी भावना करती रहो कि यह भगवान् विष्णु मेरा सेवक है, क्योंकि मैं हमेशा अपने मन से तुमको अपनी स्वामिनी मानता हूँ। इसलिये हे आर्ये ! तुम्हारी और मेरी हमेशा के लिये माता और पुत्र की जैसी प्रीति संसार में निरन्तर व्याप्त हो जावे।

ब्रह्मा संसार के सृष्टि-कर्ता, विष्णु रक्षक और शिव संहार-कारक हैं, यह सब लोकों में प्रसिद्धि है। हे भगवति ! सत्य होने पर भी हम लोग तुम्हारी इच्छा से तुम्हारी दी हुई शक्ति से युक्त होकर हम तीनों उक्त कार्य करने में समर्थ होते हैं। यथा, दे० भा०, स्कन्ध ३, अध्याय ५—

'भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं, त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिंतयामि ।
एषाऽऽवयोरविरता किल देवि ! भूयाद्, व्याप्तिः सदैव जननी-सुतयोरिवार्ये ॥
ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमा-पतिश्च, संहार-कारक इयं तु जने प्रसिद्धिः ।
किं सत्यमेतदपि देवि ! तवेच्छया वै, कर्तुं क्षमा वयमजे ! तव शक्ति-युक्ताः ॥'

प्रस्तुत स्तुति में भगवान् शिव क्या कहते हैं ? उसे भी सुनिये—

हे भगवति ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव द्वारा कल्पित (रचित) यह सम्पूर्ण जगत् स्थावर और जङ्गम-रूप में जो कुछ दिखायी दे रहा है, वह सब तुम्हीं हो। अर्थात् तुम्हारा ही रूप है। हे माता ! तुम अपनी रुचि के अनुसार नाना प्रकार के वेष (रूप-रचना) बनाकर अनेक प्रकार के विलासों में कौतूहल-

पूर्वक रमण कर फिर विराम करती हो। कहने का तात्पर्य यह है कि जब इच्छा होती है, तब रमण करती हो, जब इच्छा पूर्ण हो जाती है, तब विराम करती हो।

आगे कहते हैं कि हे माता ! आपकी मति बहुत ही विषम है। यदि ऐसा न होता, तो आपने इस जगत् में किसी को राजा बनाया, किसी को मन्त्री, किसी को धनवान (धनी) और किसी को निर्धन; कोई आनन्द भोग रहा है और किसी को भोजन भी प्राप्त नहीं है।

आगे कहते हैं कि तुम्हारे सत्व, रज और तम—ये तीनों गुण ही सृष्टि, स्थिति और संहार-कारक हैं। अतएव इन गुणों से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को पैदा कर इनको संसार का कारण बना दिया।

जब हम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) आपकी आज्ञा पाकर विमान में बैठे और ब्रह्माण्ड का भ्रमण किया, तो हमने और भी अनेक ब्रह्माण्ड देखे, तब यह प्रश्न उठा कि ये दूसरे ब्रह्माण्ड किसने पैदा किये, इसका उत्तर हमको हमारे हृदय में मिला कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को निर्माण करनेवाली आदि-शक्ति आप ही हैं। यथा—

भवसि सर्वमिदं स-चराचरं, त्वमज-विष्णु-शिवाकृति कल्पितम्।
विविध-वेष-विलास - कुतूहलैर्विरमसे रमसेऽम्ब ! यथा रुचि।।
यदि न ते विषमा मतिरम्बिके ! कथमिदं बहुधा विहितं जगत्।
सचिव-भूपति-भृत्य-जनाऽऽवृतं, बहु-धनैरधनैश्च समाकुलम्।।
परिचितानि मया हरिणा तथा कमलजेन विमान - गतेन वै।
पथि गतौ भुवनानि कृतानि वा, कथय केन भवानि नवानि च।। ।।३।।

अब चौथे श्लोक में श्री भगवती भुवनेश्वरी का उपासक स्तुति प्रारम्भ करता है—

शाक्त दर्शन के अनुसार शक्ति को विश्व की उत्पत्ति की आदि कारण मानकर कवि शक्ति द्वारा विश्व का रचना-प्रकार दिखाता हुआ स्तुति करता है—शैव और वैष्णव दर्शन शास्त्रों में यह माना गया है कि शक्ति पदार्थ ब्रह्म पदार्थ में अन्वित होता है, अर्थात् शक्ति-ब्रह्म से सम्पर्क स्थापित करती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि ब्रह्म पदार्थ (ब्रह्म) मुख्य (प्रधान) है और शक्ति पदार्थ (शक्ति) गौण है।

परन्तु शाक्त दर्शन में अर्थात् शाक्त मत में शक्ति पदार्थ को ही मुख्य तथा स्वतन्त्र माना जाता है। अतएव प्रत्यभिज्ञा हृदय में कहा है—"चितिः स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि-हेतुः" अर्थात् चिति (परा-शक्ति-रूपा) स्वतन्त्र है और वही विश्व की सिद्धि का कारण है। सदा-शिव से लेकर पृथ्वी-तत्व पर्यन्त इस विश्व की सिद्धि में अर्थात् पैदा करना (सृष्टि), पालना (स्थिति) और समाप्त करना (संहार)—इन तीनों कार्यों का कारण परा-शक्ति-रूप चिति ही है।

वह स्वतन्त्र चिति-शक्ति भगवती अनुत्तर विमर्श-मयी शिव-तत्व से अभिन्न है। उसी से संसार की सृष्टि होती है और पालन (व्यवस्थापन) होता है। जब यह शक्ति आविर्भाव से विमुख हो जाती है (पराङ्मुख होती है), तब प्रलय होती है।

ऊपर लिखे हुये प्रत्यभिज्ञा सूत्र का अनुमोदन निम्नलिखित पद्य भी करता है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्व-रूपिणी, स्फुरत्तामात्मनः पश्येत् तदा चक्रस्य सम्भवः।'

अर्थात् जब यह विश्व-रूप धारण करनेवाली परा शक्ति अपनी इच्छा से अपने में स्फुरण करती है, तब इस विश्व की उत्पत्ति होती है। यही परा-शक्ति शिव-शक्ति-रूप धारण करके इस संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। इसे ही 'परा-वाक्' तथा 'संविदी कला' भी कहते हैं। इसका यह रूप

मन से तथा वाणी से अगोचर है अर्थात् मन इसका मनन (विचार) और वाणी इसका वर्णन नहीं कर सकती, अतः यह स्व-संवेद्य है, अर्थात् अपने आप जानने के योग्य है।

इससे ही शाक्त तथा शैव-मत में माने जानेवाले षट्-त्रिंशत् (छत्तीस) तत्वों का आविर्भाव होता है।

शक्ति और शक्ति-मान् का अभेद होने से ब्रह्म पदार्थ और शक्ति पदार्थ दो नहीं हैं। कहा है—

'शक्तिः साक्षान्महा-देवी महा-देवस्तु शक्ति-मान्, तयोर्विभूति-लेशो वै सर्वमेतच्चराचरम्।'

अर्थात् महा-देवी शक्ति हैं और महा-देव शक्तिमान् हैं। यह चराचर—जड़ और चेतन संसार इन दोनों से ही उत्पन्न हुआ है।

'यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः, नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्र-चन्द्रिकयोरिव।'

अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा से उसकी चन्द्रिका (चाँदनी) अलग नहीं है, वरन् दोनों एक हैं, उसी प्रकार शिव और शिवा में (महा-देव और महा-देवी में) कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं।

अब श्लोक का अर्थ देखिये। उपासक कहता है—हे विन्दु-स्वरूपे! जिसका प्रथम स्वरूप विन्दु-रूप है, ऐसी समस्तेशि, हे सबकी स्वामिनी! 'सब' से यहाँ पर तीनों लोकों का अथवा चौदह लोकों या अनन्त ब्रह्माण्डों का ग्रहण किया गया है, जो इन सब लोकों की स्वामिनी है। 'भुवनानां ईश्वरी भुवनेश्वरी'—जो सब भुवनों की स्वामिनी है। 'परत्वेन तत्त्वाऽभिधाने' अर्थात् शिव-शक्त्यात्मक उभय तत्व-रूपी पर-तत्व से जिसके षट्-त्रिंशत्तत्व (३६ तत्व) स्वरूपों से जिसके पृथक्-पृथक् नाम बन गये हैं अर्थात् शिव-तत्व से लेकर पृथिवी-तत्व-पर्यन्त ३६ तत्वों के नाम से ही जो पृथक्-पृथक् नामों से पुकारी जाती है।

शास्त्र प्रकृति को ही मूल प्रकृति और प्रधान नाम से पुकारते हैं अर्थात् मूल प्रकृति और प्रधान (मुख्य) प्रकृति के ही नाम हैं। इसी प्रकृति-तत्व से सर्व-प्रथम महत्-तत्व उत्पन्न हुआ है, इसी महत्-तत्व का नाम बुद्धि-तत्व भी है। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर अन्तःकरण में जब सत्व-गुण की प्रधानता होती है, उस अवस्था का नाम बुद्धि-तत्व अथवा महत्-तत्व है।

अतः उपासक कहता है कि हे प्रधाने, हे प्रकृति-स्वरूपिणि भगवति! बुद्धि-तत्व में प्राप्त होनेवाली अर्थात् बुद्धि-स्वरूपिणि हे भगवति! तुम्हारे लिये मैं प्रणाम करता हूँ।

दुर्गा सप्तशती में भी लिखा है—

'या देवी सर्व-भूतेषु बुद्धि-रूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।'

अर्थात् जो सब प्राणियों के शरीर में बुद्धि-रूप से विराजमान है, उसके लिये बार-बार प्रणाम करता हूँ।

पुनः प्रार्थना करता है कि हे अहङ्कार-स्वरूपे! तुम्हारे लिये प्रणाम हो।

जिस आवरण में रजोगुण और सत्व-गुण को दबाकर तमोगुण की अन्तःकरण में प्रधानता होती है अर्थात् तमोगुण बढ़ जाता है, उस अवस्था को अहङ्कार-तत्व कहते हैं, अतः उपासक कहता है कि प्राणियों के शरीर के भीतर अहङ्कार-स्वरूपिणी भी तुम्हीं विराजमान हो।

'नमस्ते समस्तेशि विन्दु-स्वरूपे'—यहाँ पर 'विन्दु-स्वरूपे' में विन्दु से क्या तात्पर्य है, इस बात को दिखाने की चेष्टा करते हैं।

शिव-तत्व को अर्थात् शिव को 'प्रकाश' और शक्ति-तत्व को अर्थात् शक्ति को 'विमर्श' कहते हैं। ये दोनों शिव और शक्ति अथवा 'प्रकाश' और 'विमर्श' ही जगत् के कर्ता और कारण माने जाते हैं। जैसे कि कहा भी है—"शिवः सर्वस्य कर्त्तेयं शक्तिः कारणमुच्यते।"

सृष्टि की रचना के लिये इच्छुक इन दोनों तत्वों के—शिव और शक्ति के आदि समागम को ही 'महा-विन्दु' कहते हैं। इस 'महा-विन्दु' से 'नाद'-तत्व पैदा होता है। तदनन्तर परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप चार वाणियाँ उत्पन्न होती हैं।

"एकोऽहं बहु स्याम्"—इस श्रुति-वचन में इसे ही 'एकोऽहं' पद से कहा गया है। "अ-आ इ-ई उ-ऊ" से लेकर 'क-५ च-५ ट-५ त-५ प-५ य र ल व श ष स ह' इन अक्षरों में सबसे पहला अक्षर 'अ'-कार—'अ' है और अन्त्य (पिछला, सबसे अन्त का) अक्षर 'ह'कार 'हं'। इन दोनों अक्षरों के मिलने से 'अहं' बना। 'अहं' का 'अ' वर्ण-माला का सबसे प्रथम अक्षर है, यह 'प्रकाश'-स्वरूप परम शिव है और 'ह'कार 'हं' सबसे अन्तिम अक्षर है, यह कला-रूप (शक्ति-रूप) 'विमर्श' है, अर्थात् इसको विमर्श-शक्ति कहते हैं। अतएव कहा है—

अकारः सर्व-वर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः, हकारोऽन्त्यः कला-रूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।'

अर्थात् समस्त वर्णों के आदि में 'अ'कार प्रकाश-रूप शिव का वाचक है तथा अन्त में आया हुआ 'हं'कार शक्ति-तत्व का बोधक है। इसी को 'अहम्' पद बता रहा है। अतएव इसे नाद या शब्द-ब्रह्म कहते हैं। अकार एवं हकार का सामरस्य पर-तत्व में ही है। इसी 'अहं' से समस्त मातृका-चक्र व्यक्त होता है, जिन्हें वाच्य-वाचक-भाव का बोधक कहते हैं।

श्रुति भी बताती है—"एको वर्णो बहुधा शक्ति-योगात् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति" अर्थात् एक नाद ही पूर्वोक्त परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूपिणी चार वाणियों को उनकी अधिष्ठात्री वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका-सहित अपने अन्दर धारण करता है। अर्थात् नाद से ही सब वाणियों और वर्णों की उत्पत्ति होती है।

इसी विषय को दूसरा श्रुति-वचन (वेद-वाक्य) भी पुष्ट करता है—

'कस्त्वमित्यहमिति होवाच, अहमेवेदं सर्वम्। तस्मादेवाहमिति सर्वाऽभिधानमिति।'

अर्थात् 'अहमेव'—'अहं'-स्वरूप मैं ही सब कुछ हूँ। मुझसे ही—'अहं' से ही सब नाम बने हैं।

नाद-तत्व से ही शिव-शक्त्यात्मक (शिव-रूप और शक्ति-रूप) श्वेत विन्दु और रक्त विन्दु व्यक्त होते हैं। अर्थात् श्वेत (सफेद) विन्दु शिवात्मक और रक्त (लाल) विन्दु शक्त्यात्मक है।

श्वेत विन्दु में रक्त विन्दु के प्रविष्ट होने से (सफेद बूँद में लाल बूँद के मिलने से) और रक्त विन्दु में श्वेत विन्दु के प्रविष्ट होने से (लाल बूँद में सफेद बूँद के मिलने से) मिश्र विन्दु (सफेद और लाल विन्दुओं के मिलने से जो विन्दु बना) कहलाता है। इस प्रकार नाद, विन्दु और मिश्र विन्दु—इन तीनों से यह स्थूल दृश्यमान प्रत्यक्ष दीखनेवाला जगत् उत्पन्न होता है।

पाठक अब 'विन्दु-रूपे' इस पद के 'विन्दु' का अर्थ समझ सकते हैं अथवा समझ गए होंगे। इसी विन्दु से समस्त संसार पैदा होता है अथवा हुआ है।

'काम-कला-विलास' में कहा भी है—

'वागर्थौ नित्य-युक्तौ परस्परं शिव-शक्ति-मयावेतौ। सृष्टि-स्थिति-लय-भेदा त्रिधा विभक्ता, त्रि-बीज-रूपेण।'

अर्थात् शब्द और अर्थ शिव-शक्ति-मय परस्पर नित्य सम्बन्ध वाले हैं। अर्थात् जिस प्रकार शब्द से अर्थ भिन्न नहीं है और अर्थ से शब्द भिन्न नहीं है, उसी प्रकार शिव से शक्ति अलग नहीं है और शक्ति से शिव अलग नहीं है। शिव वाणी-स्वरूप है और शक्ति है अर्थ-स्वरूप।

अतएव महा-कवि कालिदास अपने 'रघु-वंश' नामक काव्य के मङ्गलाचरण में शिव-पार्वती को संसार के माता-पिता बताकर उनका शरीर इस प्रकार परस्पर मिला हुआ है जैसे वागर्थ (वाणी और अर्थ) शब्दार्थ परस्पर मिले हुये हैं, ऐसा लिखते हैं–

'वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये। जगत. पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ॥'

नेपाल के उपासक-शिरोमणि स्व० श्री राणाजी ने 'श्री परा-महिम स्तोत्र' की व्याख्या में लिखा है कि रक्त और शुक्ल विन्दुओं का युगल जोड़ा संसार को पैदा करता है। शुक्ल, अरुण और मिश्र विन्दु-रूप द्वारा संसार का पालन होता है और केवल अकेले मिश्र विन्दु से संसार की प्रलय होती है।

ये शुक्ल, रक्त और मिश्र विन्दु क्रम से चन्द्र, अग्नि और सूर्य के उत्पादक हैं अर्थात् शुक्ल विन्दु से चन्द्रमा की, रक्त विन्दु से अग्नि की और मिश्र विन्दु से सूर्य की उत्पत्ति हुई है।

इन तीन विन्दुओं के समूह को ही 'काम-कला' कहते हैं। 'काम' का अर्थ है—

'काम्यते योगिभिः स्वात्मत्वेन इति कामः स एव मिश्र-विन्दुः।'

कला का अर्थ है—

'अन्य विन्दु-युगलम्। तेषां समूह एव काम-कला (महा-माया) इत्युच्यते।'

मिश्र विन्दु को 'काम' और रक्त-शुक्ल विन्दुओं को 'कला' कहते हैं। 'काम-कला' का अर्थ महा-माया भगवती भुवनेश्वरी महा-त्रिपुर-सुन्दरी (महा-काली) हुआ। ॥ ४ ॥

शक्ति-तत्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पञ्च-तन्मात्राओं द्वारा स्थूल पञ्च-महा-भूत रूप से परिणत होकर आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी रूप धारण कर इस दृश्यमान स्थूल प्रपञ्च-रूप से प्रतीत होता है। इसी बात को कवि ध्यान में रखकर स्तुति करता है कि आकाशादि पञ्च-महा-भूतों की शब्द-स्पर्शादि जो पञ्च-तन्मात्रायें हैं, वे सब तुम्हारे ही रूप हैं, अतः मैं उन्हें तुम्हारा रूप समझ कर प्रणाम करता हूँ।

एक-एक तन्मात्रा को अलग-अलग सम्बोधित कर हे शब्द-रूपे, हे व्योम (आकाश) रूपे, हे स्पर्श-रूपे, हे वायु-रूपे, हे रूप-रूपे, हे तेजः-स्वरूपे (हे सूर्य-रूपे, हे अग्नि-स्वरूपे), हे रस-स्वरूपे, हे जल-स्वरूपे (अम्भः जल), हे गन्ध-स्वरूपे, हे पृथ्वी-रूपे, भगवति भुवनेश्वरि ! तुम्हारे लिए नमस्कार हो अर्थात् आकाशादि पञ्च-महा-भूत और स्पर्शादि उनके गुण—सब तुम्हारे ही रूप हैं। अतः मैं इन सबको पृथक्-पृथक् नमस्कार करता हूँ। ॥ ५ ॥

उपासक कहता है कि आकाशादि पञ्च-महा-भूतों के गुणों का गान करनेवाली पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ भी तुम ही हो और पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी तुम्हारा रूप हैं। अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। अतः तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

शब्द को सुननेवाली श्रोत्रेन्द्रिय (कान), स्पर्श का अनुभव करनेवाली (गर्मी और ठण्ड को पहिचाननेवाली) त्वगिन्द्रिय (त्वचा—चर्म), रूप को पहिचाननेवाली चक्षु इन्द्रिय (आँख), रस का खट्टा-मीठा स्वाद जाननेवाली रसनेन्द्रिय (जिह्वा) तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध को जाननेवाली (सूँघनेवाली)

घ्राणेन्द्रिय (नाक)—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तुम्हारा ही रूप हैं। वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पद् (पैर), पायु (गुद)-स्थान, उपस्थ (मूत्र और रेत निकलने का स्थान)—ये पाँच कर्म-इन्द्रियाँ भी तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं।

मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—ये भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। अतः तुम्हारे इन सब रूपों के लिए पृथक्-पृथक् नमस्कार करता हूँ।

हे विरूपे ! इनके अतिरिक्त तुम्हारे और भी विशेष रूप हैं, अथवा तुम 'विरूपा' रूप - रहिता हो, अर्थात् सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी हो। हे विभो—तुम सर्व-व्यापिनी हो, तथा विशेषता से दीप्तिमती हो। हे विश्व-रूपे, हे विश्व-रूपिणि—

विश्वं एव यस्या रूप इति विश्व-रूपा, तदुक्तं विष्णु-पुराणे—'यथा हि कदली नाम त्वक्-पत्राऽन्या न दृश्यते, एवं विश्वस्य नान्यत्वं त्वत्स्थादीश्वर दृश्यते।'

अर्थात् जैसे कदली (केला) छाल और पत्तों के अतिरिक्त दूसरी वस्तु नहीं है, वैसे ही विश्व तुम्हारे अलावा और कोई वस्तु नहीं है।

देवी भागवत में भी कहा है—

वट-पत्राशयानाय विष्णवे काल-रूपिणे। श्लोकार्धेन तदा प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम्। सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातन ।।

अर्थात् भगवती कहती हैं कि मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो कुछ है, वह मैं ही इस संसार में हूँ। ।। ६ ।।

भगवती भुवनेश्वरी का उपासक प्रार्थना करता है कि हे महा-देवि ! तुम संसार में लोगों के हृदयों में अन्तरात्मा-रूप से सूर्य बनकर उनके अज्ञानान्धकार का नाश करती हो और चन्द्रमा बनकर तुम प्रजाओं को औषधि-रूप से पुष्ट करती हो तथा अग्नि-रूप धारण कर जलाने का और यज्ञ में आहुति को स्वर्ग-लोक में पहुँचाने का कार्य तुम ही करती हो, अतः हे माता, ये तीनों तेजः-स्वरूप—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तुमसे ही पैदा हुए हैं। अर्थात् तुमने ही इनको शक्ति प्रदान की है।

गीता में विभूति-योग के उपदेश में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

'ज्योतिषां रविरंशुमान्', 'नक्षत्राणामहं शशी', 'वसूनां पावकश्चास्मि।'

अर्थात् हे अर्जुन ! ज्योतियों में मैं सूर्य हूँ। नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ और वसुओं में अग्नि हूँ।

वेद में भी लिखा है—"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।" उस पर-ब्रह्म के तेज से ही सबमें तेजी है, अर्थात् चमक है। यहाँ देव्युपनिषद् का थोड़ा-सा भाग दिया जाता है—

सैषाऽष्टौ वसवः, सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा सत्व-रजस्तमांसि। सैषा ग्रह-नक्षत्र-ज्योतिष-कला-काष्ठादि-काल-रूपिणी।

भगवती भुवनेश्वरी का मन्त्रोद्धार है—

वियदाकार-संयुक्तं वीति-होत्र-समन्वितम्। अर्धेन्दु-लसितं देव्या बीजं सर्वार्थ-साधकम् ।।

अर्थात् भगवती भुवनेश्वरी ही अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, सत्व, रज और तमो-गुण, नव ग्रह, सत्ताइस नक्षत्र, कला, घटी, पल, दिन, रात, वर्ष, मास तथा दिशा (४, ८, १०) स्वरूपिणी है।

वियद्=हकार, वीति=ईकार, होत्र=रकार और अनुस्वार से बना हुआ माया-बीज 'ह्रीं'कार चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का देनेवाला है ।। ७ ।।

अव उपासक ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-स्वरूपिणी भगवती की स्तुति ऊपर लिखे पद्यों से पृथक्-पृथक् करता है और कहता है कि चतुर्मुख, हंस-वाहन, रजो-गुण-स्थित ब्रह्मा का रूप धारण कर हे जगन्माता, सृष्टि के कार्य के लिए तुम स्वयं ही अपने परंपद का ध्यान करती हो।

शिर पर मुकुट पहनकर तथा शङ्ख-चक्र धारण करनेवाली विष्णु - स्वरूपिणी तुम्हीं हो तथा सत्व-गुण में स्थित होकर जो इस विश्व का पालन करनेवाले भगवान् विष्णु हैं, वे तुम्हारे ही अंश हैं। अतः तुम स्वयं विष्णु-स्वरूपिणी हो अर्थात् विष्णु तुमसे भिन्न नहीं हैं।

हे भगवति ! जटा-जूट में चन्द्रमा की कला तथा गंगा को धारण करनेवाले, कल्पान्त प्रलय-काल में तमो-गुण-विशिष्ट परशु (फरसा) और अक्ष-माला धारण कर जग-संहार-कारी रुद्र-रूप में तुम्हीं विराजमान होती हो।

'श्रीललिता-सहस्रनाम' में भगवती के ये तीनों नाम इस प्रकार आये हैं–

सृष्टि-कर्त्री ब्रह्म-स्वरूपा, गोप्त्री गोविन्द (विष्णु)-रूपिणी, संहारिणी रुद्र-रूपा।

अर्थात् संसार की रचना करनेवाली ब्रह्मा-रूपा, संसार की रक्षा करनेवाली विष्णु-रूपिणी, संसार का संहार करनेवाली रुद्र-स्वरूपा।

सृष्टिर्जगन्निर्माणं रजो-गुण-प्रधानस्य ईश्वरस्य कृत्यं, तस्य कर्त्री। ब्रह्म-रूपा–ब्रह्म चतुर्मुखस्तादृश ईश्वरः स एव रूपं यस्याः। तदुक्तं विष्णु-पुराणे—ब्रह्म-विष्णु-शिवा ब्रह्मन् ! प्रधाना ब्रह्म-शक्तयः। गोपनं जगतः स्थितिः, सा च सत्व-गुण-प्रधानस्य ईश्वरस्य कृत्यं, तस्य कर्तृत्वात् गोप्त्री। गोविन्दस्तादृश ईश्वरो विष्णुः, स एव रूपं यस्याः। तथा च हरि-वंशे प्रकृत्या प्रथमो भागः उमा-देवी यशस्विनी। व्यक्तः सर्व-मयो विष्णुः स्त्री-संज्ञो लोक-भावनः॥

यहाँ पर भुवनेश्वरी-स्तुति में जगत्-पालक विष्णु के लिए 'नारायण' - शब्द आया है। अतः 'नारायणाख्या' में नारायण शब्द का अर्थ है—

नरस्य अपत्यं इत्यर्थे नारायणः। विष्णुः शिवो वा।

यहाँ पर विष्णु का अर्थ है, शिव का नहीं।

'मनुस्मृति' में बताया है—

'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर-सूनवः। अयनं तस्य ता यस्मात् तस्मान्नारायणः स्मृतः।'

अर्थात् जल का नाम 'नारा' है। 'नारा' में जिनका अयन घर है, वे नारायण क्षीर-सागर में निवास करते हैं। क्षीर का अर्थ जल भी होता है—"नीर-क्षीराम्बु-शम्वरम्" (कोशः)।

'ब्रह्म-वैवर्त-पुराण' में भी कहा है—

'नाराणां अयनं यस्मात् तस्मान्नारायणः स्मृतः।'

यहाँ पर 'नार' शब्द का अर्थ जीव है। 'नृ' धातु ले जाने के अर्थ में भी प्रयुक्त होती है। अतः–

'नयतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः।'

अर्थात् जो लोगों को इस लोक से पर-लोक में ले जाता है।

रुद्र-संज्ञां दधाना=रुद्र-स्वरूपिणी—रुद्र बनकर जो संहार करती है। 'रुद्र' का अर्थ है–'रुजं द्रावयति रोदयतीति वा'—जो रोगों को भगा देता है अथवा जो रुलाता है–

'रुजं द्रावयतं तस्माद् रुद्रः पशु-पतिः शिवः' (शिव-रहस्य)। 'प्राण-वायु रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयन्ति' (छान्दोग्योपनिषत्)।

अर्थात् प्राण ही रुद्र हैं। ये सबको रुला देते हैं। 'महाभारत' में कहा है—

तुष्ट्यर्थं ब्रह्मणः पुत्रो ललाटादुत्थितः स्वयम्। अरुदत् सु-स्वरं घोरं जगतः प्रभुरव्ययः॥

अर्थात् ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए संसार के स्वामी भगवान् ब्रह्मा के ललाट से पुत्र-रूप में पैदा होकर घोर भयङ्कर स्वर में रोने से रुद्र कहलाये।

वायवीय संहिता में लिखा है कि दुःख को अथवा दुःख के कारण को 'रुत्' कहते हैं। उसे भगा देने से संसार के परम कारण शिव रुद्र कहलाते हैं। यथा—

रुद् दुःखः दुःख-हेतुर्वा तद् द्रावयति यः प्रभुः। रुद्र इत्युच्यते तस्माद् शिवः परमः कारणम्॥ ॥८, ६, १०॥

उपासक पहले की हुई अपनी स्तुति में दर्शा चुका है कि सृष्टि, स्थिति और संहार-कारक त्रि-देव—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तुम्हारे ही अंश हैं। अब आगे बताता है कि सरस्वती आदि शक्तियाँ भी तुम्हारे ही अंशों से उत्पन्न हुई हैं। उनकी कोई स्वतन्त्र स्थिति नहीं है।

हे भगवति भुवनेश्वरि! परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी जिसका उच्चारण सब करते हैं और जो शास्त्र-रूपिणी है तथा जो संसार के बोल-चाल में आती है, वह वाग्देवता सरस्वती तुम्हारा ही रूप है। सरस्वती कैसी है? जिसके हाथ में अक्ष-माला है; जिसका एक-एक मनका चिन्तामणि-रूप है। जिस प्रकार चिन्तामणि कर-तल-गत हो जाने से जिस वस्तु की चिन्ता की जाए, वह तत्क्षण ही चिन्ता करनेवाले को मिल जाती है, उसी प्रकार आपकी माला के मनके फल-प्रद हैं।

'अक्ष-माला' का अर्थ 'वर्ण-माला' भी होता है। 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त वर्णों (अक्षरों) की माला। ज्ञानार्णव तन्त्र में लिखा भी है—

'अकारः प्रथमो देवि! क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम्। अक्ष-मालेति विख्याता मातृका-वर्ण-रूपिणी।
शब्द-ब्रह्म-स्वरूपेयं शब्दातीतं न जायते।'

अर्थात् यह अक्ष-माला ('अ' से 'क्ष' तक के अक्षरों की माला) शब्द-ब्रह्म-रूपिणी है। इससे शब्दा-तीत (जिसका वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता) पर-ब्रह्म का जप किया जाता है। अतएव बहिर्मातृका-न्यास के ध्यान—'मुद्रामक्ष-गुणं सुधाढ्य-कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजैः'—में 'अक्ष-गुणं' का अर्थ यही है।

शारदा-तिलक में शारदा के ध्यान—'हस्तैः पद्मं रथाङ्गं गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्ण-मालां'—में 'वर्ण-माला' का अर्थ टीकाकार ने अक्ष-माला ही किया है। पुनः सरस्वती के दूसरे ध्यान—'व्याख्यां वर्णाक्ष-मालां मणि-मय-कलशं पुस्तकं चोद्वहन्तीं' में भी 'अक्ष-माला' को 'वर्ण-माला' बताया गया है। 'व्याख्या' का अर्थ 'व्याख्यान मुद्रा' है।

अथवा पर-ब्रह्म-रूपिणी भगवती भुवनेश्वरी के चिन्तन के लिए सरस्वती हाथ में अक्ष-माला लेकर मोक्ष के लिए चिन्ता करती हैं, तब सरस्वती आदि शक्तियों का भी देह त्याग करना आवश्यक ही है। सब बातें पहली स्तुति में लिखी जा चुकी हैं। ब्रह्मा कहते हैं—'याचे त्वां भव-भीति-नाश-चतुरां मुक्ति-प्रदां चेश्वरीं।'

अतएव सरस्वती भी अक्ष-माला लेकर मोक्ष के लिए भगवती की चिन्ता करती हैं। 'स्याच्चिन्ता स्मृतिराध्यानम्'—चिन्ता 'चिन्त्' धातु से बनता है। 'सानन्दां सुप्रसन्नां त्रिभुवन-जननीं चेतसा चिन्तयामि'—(शङ्कराचार्य-विरचित मानस-पूजन)।

'सुधा-कुम्भ-लेखा-धरा'—जो वाग्देवता सरस्वती अपने भक्तों के लिए अमृत-कलश को धारण करती है। अतएव वाग्-देवता के ध्यान में—'सुधाढ्य-कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजैः'—लिखा गया है। सर-

स्वती का सेवक यशः-शरीर में अमर हो जाता है। सरस्वती-भक्त कविवर कालिदास का कीर्ति-कलेवर अद्यावधि विद्यमान है।

'त्रीक्षणा'–जो त्रिनेत्रा है अर्थात् सूर्य, चन्द्र और अग्नि–ये जिसके तीन नेत्र हैं। ये तीनों ज्योतियाँ ही स्थावर-जङ्गमात्मक (जड़-चेतन) संसार को जीवित रखती हैं।

'अर्धेन्दु-राजत्-कपर्दा'–जिसके मस्तक पर आधा चन्द्रमा शोभा दे रहा है। वास्तव में 'कपर्द' का अर्थ जटा-जूट है। शिव जी के जटा-जूट का नाम 'कपर्द' है। अतएव शिवजी का नाम 'कपर्दी' है। यहाँ पर 'कपर्द' का सामान्यार्थ मस्तक के ऊपर के बालों का है तथा जिसने शुभ्र वस्त्र धारण कर रखे हैं। 'शुक्लांशुक' (शुभ्र वस्त्र) सत्व गुण के द्योतक हैं। अर्थात् सरस्वती सत्व-गुण-प्रधाना है।

'आकल्प-देहा'—जिसकी शरीर-रचना, वेष-भूषा बहुत सुन्दर है। अथवा कल्प-पर्यन्त जो देह धारण करती है। 'आकल्पं वेशं नेपथ्यं प्रति-कर्म प्रसाधनं' तथा 'संवर्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पांत' इत्यपि अमर-कोषः।

'सुधा-कुम्भ-लेखा-धरा'–इस पद में 'अधरा' ऐसा पदच्छेद करने से अधर का अर्थ वाग्भव बीज 'ऐं' निकलता है, जो वाग्देवता (सरस्वती) का बीज है–'योनिः सरस्वती-बीजं अधरं वाग्भवं च वाक्' (तन्त्राभिधान)। लेखा = हृल्लेखा, ह्रीं–यह भुवनेश्वरी-बीज बनता है। चिन्ता = चिन्तामणि–'नामैक-देशे नाम-ग्रहणं' इस नियम से चिन्ता से चिन्ता-मणि, चिन्ता-मणि = क, और 'क' का नाम, धरा = पृथ्वी, पृथ्वी-वीज 'लं', त्रीक्षण = ईशान (महादेव), ईशान = 'ई', 'अथ काम-कला वाम-नयनं विन्दु-संयुतं। अर्क-माता कला वाणी नादोऽर्धेन्दुः सदा-शिवः'–भूत-डामर तन्त्र का बीजाभिधान। इस प्रकार 'क-ल-ई' मिलकर 'क्लीं' बीज बनता है। एवं 'ह्रीं, क्लीं'—ये दो बीज भुवनेश्वरी के निकलते हैं। ॥११॥

अब श्रीभगवती भुवनेश्वरी का उपासक भगवती से प्रार्थना करता है कि दुर्गा-नाम की जो महा-शक्ति है, वह तुम्हीं हो। हे सर्गादि-हीने, सृष्टि-स्थिति-संहार-रहिते, अर्थात् तुम जन्म-मरण से रहित हो, अतः तुम सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी हो। तुम्हारा जन्म-मरण नहीं है। जन्म और मरण शरीर-धारी का होता है। तुम निष्कल ब्रह्म-रूपिणी हो। तुम्हारा उपासक केवल तुम्हारी उपासना के लिए तुम्हारे सगुण (सकल) ध्यान की कल्पना कर लेता है। दुर्गा भगवती कैसी है?

'लसच्छङ्ख-चक्रा'—जिसके एक हाथ में शङ्ख, दूसरे हाथ में चक्र, तीसरे हाथ में खड्ग और चौथे हाथ में त्रिशूल विराजमान हो रहे हैं। यद्यपि इस स्तुति-पद्य में त्रिशूल का वर्णन नहीं आया है और चतुर्थ हस्त का भी वर्णन नहीं किया गया किन्तु इससे कोई हानि नहीं है। भक्त का तात्पर्य तो इतना ही है कि भगवती दुर्गा भी तुम्हारा ही रूप हैं।

'चलत्-खड्ग-भीमा'–संग्राम में शत्रुओं के ऊपर घूमते हुये खड्ग से शत्रुओं को जो भयङ्कर प्रतीत होती है।

'नदत्-सिंह-वाहा'—जो गरजते (दहाड़ते) हुये सिंह के ऊपर बैठी हुई है और जो 'ज्वलत्-तुङ्ग-मौलि' है अर्थात् जिसके शिर पर सूर्य के समान देदीप्यमान स्वर्ण-मुकुट विराज रहा है तथा जिसके चमकते हुये खड्ग को देखकर तथा प्रज्वलित मुकुट की चकाचौंध से भयभीत होकर दैत्यों (दिति के पुत्रों) का समूह प्राण बचाने के लिये रण-क्षेत्र के चारों ओर से जहाँ मार्ग मिलता है, वहीं से भाग रहे हैं। असुरों को रण-क्षेत्र से भागते हुये देखकर युद्ध को देखने के लिये आये हुए सिद्ध, गन्धर्व आदियों का समूह भगवती दुर्गा के पराक्रम की स्तुति कर रहा है।

इस स्तुति से दुर्गा सप्तशती का यह ध्यान मिलता है—

'कालाभ्राभां कटाक्षैररि-कुल-भयदां, मौलिमर्धेन्दु-रेखां शंख-चक्रं कृपाणं। त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्रां, सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं, तेजसा पूरयन्तीं ध्याये दुर्गां जयाख्यां। त्रिदश-परिवृतां सेवितां सिद्धि-कामैः।'

'दुर्गा'-पद की निरुक्ति देवी-पुराण में इस प्रकार की गई है—

'सुवलादि-भये दुर्गे तारिता रिपु-सङ्कटे। देवाः शक्रादयो येन तेन दुर्गा प्रकीर्तिता ॥'

अर्थात् इन्द्रादि देवताओं को जिसने शत्रुओं के दुर्ग से बचाया, अतएव वह 'दुर्गा' शब्द से कही गई है। मार्कण्डेय पुराण में भी—

'तत्रैव च बधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरं। दुर्गा-देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥'

दुर्गा भगवती भीमरथी नदी के तट पर सन्नति क्षेत्र में भी निवास करती हैं। वाराणसी में सुबाहु नाम के राजा की प्रार्थना पर दुर्गा-नाम से प्रसिद्ध होकर भगवती वहाँ भी रहने लगीं। देवी-भागवत—

'नगरेऽत्र त्वया मातः स्थातव्यं सर्वदा शिवे! दुर्गा-देवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता ॥'

श्रीललिता-सहस्र-नाम में भगवती के नामों में—'दुर्लभा, दुर्गमा, दुर्गा, दुःख-हन्त्री, सुख-प्रदा'—ये नाम गिनाये गये हैं।

'ज्वलत् तुंग-मौलिः'—इस पद की रचना दुर्गा-सूक्त के—

तामग्नि-वर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्म-फलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः'.—इस मन्त्र के आधार पर की गई है।

देव्युपनिषद् में भी भगवती दुर्गा महा-शक्ति का वर्णन आया है—

'मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञान-रूपिणी। ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य-साक्षिणी ॥ यस्याः पर-तरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता। दुर्गात् सन्त्रायते यस्माद् देवी दुर्गेति कथ्यते ॥ प्रपद्ये शरणं देवीं दुं दुर्गे दुरितं हर। तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचार-विघातिनीम् ॥ नमामि भव-भीतोऽहं संसारार्णव-तारिणीम्।'

अर्थात् दुर्गा-शक्ति से बढ़कर दूसरी शक्ति नहीं है। हे दुर्गे! तुम हमारे पापों का नाश करो। दुराचार और दुराचारी (दुराचरण-वालों) का नाश करनेवाली, संसार-सागर से पार लगानेवाली भगवती दुर्गा को, संसार के आवागमन के भय से डरा हुआ मैं प्रणाम करता हूँ। मुझे अपनी शरण में लेवे।

भगवती दुर्गा चतुर्भुजी, अष्ट-भुजी, दश-भुजी और षोडश-भुजी है। षोडश-भुजी दुर्गा का नाम भद्र-काली भी है। यह रजोगुणात्मिका है। इसका ध्यान कालिका-पुराण में यह लिखा है—

योग-निद्रा महा-माया जगद्धात्री जगन्मयी। भुजैः षोडशभिर्युक्ता भद्र-कालीति विश्रुता ॥ क्षीरोदस्योत्तरे तीरे विभ्रती विपुलां तनुम्। अतसी-पुष्प-वर्णाभा ज्वलत्-कांचन-कुण्डला ॥

१२ वें पद्य से भुवनेश्वरी के 'ह्रीं' और 'क्लीं' इन दो वीजों का उद्धार होता है। यथा—

'चलत्-खड्ग-भीमा'—इस पद से भीम=हकार, 'ज्वलत्' से 'ज्वलन-वह्नि'='रं', 'ईशि' में से ईकार लेने पर 'ह, र, ई'—मिलकर 'ह्रीं', 'शङ्ख' शब्द से 'नामैक - देशे नाम - ग्रहणम्' इस नियम के अनुसार 'शंख-भृत्'=कृष्ण (विष्णु)—'क्लीं'। यह कृष्ण-बीज है तथा काम-बीज भी। 'चक्र' से चक्र-पाणि का बोध होता है। चक्र-पाणि='क्लीं'। 'दैत्य' से दैत्यारि का ग्रहण किया जाता है। दैत्यारि='क्लीं'। भगवान् विष्णु अथवा कृष्ण शब्द से 'क्लीं' बीज का ही बोध होता है। 'ह्रीं' बीज दुर्गा के मन्त्र में भी है तथा 'क्लीं' बीज भी दुर्गा-मन्त्र में आता है। यथा—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः। क्लीं दुं फट्। ॥१२॥

भगवती भुवनेश्वरी का उपासक अनन्य भावना से स्तुति करता हुआ कहता है कि हे माता ! त्रिपुरासुर को मारनेवाले भगवान् सदा-शिव के शरीर की अर्ध-भाग-स्वरूपा अर्थात् उनके वाम भाग में विराजमान होनेवाली गिरि-राज हिमालय पर्वत की आत्मजा--पुत्री (आत्मनः जाता आत्मजा--पुत्री) !

पुत्र को आत्मज और पुत्री को आत्मजा कहते हैं। यतः पुत्र अथवा पुत्री पुरुष की आत्मा से ही दोनों पैदा होते हैं। नामकरण-संस्कार करता हुआ पिता यह वैदिक मन्त्र पढ़ता है—

'अङ्गादङ्गात् सम्भवसि, हृदयादधिजायसे, आत्मा वै पुत्र-नामाऽसि, त्वं जीव शरदः शतम्'

अर्थात् तुम मेरे प्रत्येक अङ्ग तथा हृदय से पैदा हुये हो और तुम मेरी ही आत्मा हो किन्तु तुम्हारा नाम पुत्र है, तुम्हारी आयु सौ वर्ष की हो।

'भवानी'—भवस्य स्त्री भवानी अर्थात् महादेव की पत्नी पार्वती। 'भवानी'-शब्द की व्युत्पत्ति शास्त्र में इस प्रकार की गई है—

भवं महा-देवं संसारं कामं वा, आनयति जीवयतीति भवानी।

अर्थात् भव महा-देव, संसार और काम-देव का नाम है। इन तीनों को जिलानेवाली—जीवित रखनेवाली। इस बात की पुष्टि देवी-पुराण इस प्रकार करता है—

रुद्रो भवो भवः कामो भवः संसार-सागरः। तत्-प्राणनादियं देवी भवानी परिकीर्तिता।।

कामदेव को शिवजी ने तो अपने तृतीय नेत्र से जलाकर भस्म कर दिया था किन्तु भगवती ने उसको अपने कृपा-कटाक्ष से पुनः जीवित कर दिया। इस पर भगवती के एक भक्त ने बड़ी उपयुक्त रचना की है--

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते, मुग्धः कटाक्ष - विधिरंकुरयाञ्चकार।
धत्ते तदा प्रभृति देवि ! ललाट-नेत्रं, सत्यं ह्रियेव मुकुली-कृतमिन्दु-मौलिः।।

अर्थात् हे भगवति ! शिवजी के तृतीय नेत्र से राख बने हुए कामदेव को जब से तुमने अपनी कृपा-दृष्टि से जीवित कर दिया, तब से भगवान् शिव अपने अग्नि-नेत्र को मानों लज्जा के मारे बन्द ही रखते हैं अर्थात् कभी खोलते नहीं क्योंकि उनके किये काम को काम-देव को जीवित करने से व्यर्थ कर दिया है।

पुनः भवानी कैसी हैं ? जिनकी बड़े-बड़े योगी महात्मा संसार से मुक्ति पाने के लिये वन्दना करते रहते हैं, अथवा महा-योगी शिव की भी वन्दनीया, यतः शक्ति के विना शिव भी शव बन जाते हैं। जैसे कि श्रीशंकराचार्य ने 'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्' इत्यादि कहा है अर्थात् शिव विना शक्ति शव-रूप हैं और शक्ति के साथ ईश्वर (समर्थ) हैं। तथा जो स्वयं 'महेशा'—महेश-स्वरूपिणी हैं और 'सुनाथा' हैं अर्थात् जिनके नाथ (स्वामी=पति) अपने वशीभूत हैं। स्त्री के लिये सबसे बड़े सौभाग्य की बात पति का अनुकूल होना है। अथवा जिसके याचक मोक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं करते। अतएव वे अच्छे याचक हैं। 'नाथृ याञ्चायाम्'—नाथृ धातु माँगने के अर्थ में आती है।

'महेशी'—महेश, महादेव की स्त्री अर्थात् पार्वती। देवी पुराण में 'महेशी' की निरुक्ति इस प्रकार है—

महा-देवात् समुत्पन्ना महद्भिर्यत आदृता। महेशस्य वधूर्यस्मात् महेशी तेन सा स्मृता।।

'अम्बिका'—अम्बा एवं अम्बिका माता के लिये कहते हैं, जो जगत् की माता है। भारती, पृथ्वी और रुद्राणी-स्वरूपा अथवा इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्तियों की समष्टि को अम्बिका कहते हैं। इन तीनों की समष्टि-रूपा। रात्रि-स्वरूपा, निद्रा-स्वरूपा वा। अर्थात् रात्रि और निद्रा अम्बिका के रूप हैं—

अम्बिका कैतवे सिद्धे निद्रायां निशि कीर्त्यते (विश्व-कोष)।

स्कन्द-पुराण के नवरात्र-प्रदीप में लिखा है कि रात्रि महा-देवी है और दिन महा-देव। मार्कण्डेय पुराण भी कहता है—

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम्। स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुल-तेजसः॥

निद्रा का समय रात्रि है। इस प्रकार अम्बिका के अनेक अर्थ हैं। अतः भक्त कहता है कि हे भुवनेश्वरि! अम्बिका भी वास्तव में तुम्हीं हो।

इस पद्य के 'गिरीन्द्रात्मजा' पद से भुवनेश्वरी-वीज 'ह्रीं' निकलता है। गिरि-सुता = ह्रीं। सुता—पुत्री और आत्मजा—पुत्री। अतः गिरीन्द्रात्मजा = ह्रीं। तथा 'पुरारति'—पुर-द्विट् माने शिव—हकार, 'विभाति' में से 'विभा' अलग करने से विभा—विभावसुः = अग्नि—रं वीज। 'महा' से महा-माया—ईकार। ह, रं और ई मिलने से दूसरा 'ह्रीं' वीज बनता है। ॥ १३ ॥

श्री भगवती भुवनेश्वरी का उपासक कहता है कि हे माता! मैं तो भगवान् विष्णु की भार्या को भी, जो लक्ष्मी हैं, तुम्हारा ही रूप मानता हूँ। अर्थात् वे तुमसे पृथक् नहीं हैं। अब लक्ष्मी के विषय में कहता है—

गगन-मण्डल के समान नील (श्याम) वर्ण, कौस्तुभ मणि से देदीप्यमान (भगवान् के वक्षःस्थल पर जो मणि है, उसका नाम कौस्तुभ है), मधु और कैटभ नाम के दैत्यों को मारनेवाले श्री भगवान् विष्णु के हृदय में सर्वदा निवास करनेवाली, जगद्-वल्लभा—संसार की प्रिया। यतः संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं, जिसको लक्ष्मी प्यारी न लगती हो। सभी उसको चाहते हैं।

अथवा भगवान् सबके पालन-कर्ता हैं और पालन-कर्ता भी पिता होता है, अथवा सृष्टि के उत्पादक भी भगवान् ही माने जाते हैं। जब भगवान् विष्णु पिता हुये, तो लक्ष्मी जगत् की माता हुईं। अपनी सन्तान पर पिता की अपेक्षा माता का अधिक प्यार होता है।

'सर्व-लोकैक-नाथां'—सम्पूर्ण लोकों की स्वामिनी। लोक चौदह माने जाते हैं। भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तप और सत्य—ये सात लोक ऊपर तथा सात लोक—अतल, वितल, सुतल, वितल, तलातल, रसातल और पाताल ये नीचे माने जाते हैं। अथवा अनेक लोक और अनेक ब्रह्माण्ड हैं। सबके स्वामी भगवान् विष्णु और सबकी स्वामिनी श्री लक्ष्मी हैं।

'श्रियं' पूर्वोक्त विशेषण-विशिष्ट श्री लक्ष्मी को 'त्वां अवैमि' तुम्हें ही मानता हूँ। 'महादेवि!'—यह भगवती भवनेश्वरी के लिये सम्बोधन है। सबसे बड़ी देवी—देव का स्त्री-लिंग—देवी। उपासक कहता है कि यदि लक्ष्मी सम्पूर्ण लोकों की एक-नाथा (एक स्वामिनी) है, तो तुम भी चौदह भुवनों की अथवा अनेक कोटि ब्रह्माण्डों की ईश्वरी (अधि-नायिका, स्वामिनी) हो। अतः लक्ष्मी तुम्हीं हो। यह तुमसे भिन्न नहीं है।

इस पद्य में 'जगद्-वल्लभां' से जगद्-वल्लभ 'क्लीं' बीज निकलता है तथा 'कैटभारेः' पद से भी कैटभारि 'क्लीं' वीज का संकेत है। 'श्रीं', 'क्लीं'—ये दोनों बीज भगवती भुवनेश्वरी के अष्टाक्षर मन्त्र में साथ-साथ आते हैं। यथा—

पाश श्री शक्ति कन्दर्पः काम-शक्तीन्दिरांकुशाः ।

यह अष्टाक्षर मन्त्र का उद्धार है। इसमें कन्दर्प और काम-वीज साथ आते हैं। 'श्रियं' से श्रीं वीज लक्षित होता है। 'व्योम-नीले' में से व्योम--आ। 'आ' से 'आं' का संकेत है।

व्योम से 'आ, लृ, ख, ह' और 'हं' का संकेत है। 'सर्व-लोकैक-नाथां' पद के सर्व-शब्द से 'ह'-कार का। सर्व-शब्द से मन्त्र-शास्त्र में 'ए, ग, स, ह' अक्षरों का बोध होता है। लोक-नाथ—लोकेश—इस शब्द से 'म्' (अनुस्वार) का अथवा व्योम-शब्द से 'हं' का। 'हं' से 'ह्रीं' का संकेत है। इस प्रकार पूर्व-लिखित भुवनेश्वरी अष्टाक्षर मन्त्र का उद्धार इस पद्य में होता है—

पाश--आं, श्री—श्रीं, शक्ति—ह्रीं, कन्दर्प—क्लीं, काम, दुबारा काम-वीज —क्लीं, शक्ति—माया ह्रीं, इन्दिरा—लक्ष्मी-वीज श्रीं तथा अंकुश-वीज क्रों।

'क्रों' वीज बनाने के अिए 'लोकैक' में से 'क', 'कैटभारे' में से 'र', लोकनाथ--लोकेश में से 'म', 'कैटभारे' में से कैटभारि—अ, उ, क्लीं। अ और उ की सन्धि करने से 'ओ' बन जाता है। इस प्रकार 'क्, र, ओ, म्'--एक साथ मिलाने से अंकुश-वीज बन जाता है। और—

पाश-श्री-शक्ति-कन्दर्प-काम-शक्तीन्दिरांकुशाः—प्रथमोऽष्टाक्षरो मन्त्रः। ततः कामिनि रंजिनि स्वाहान्तोऽष्टाक्षरः सद्भिरपरः परिकीर्तितः।

इस प्रकार शारदा-तिलकोक्त प्रथम अष्टाक्षर मन्त्र का उद्धार करने का प्रयत्न उपर्युक्त पद्य में किया गया है। ॥ १४ ॥

इस पद्य में भगवती भुवनेश्वरी का उपासक कहता है—हे महा-देवि ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं की जो महा-शक्तियाँ अपने-अपने महा-भैरव के चिह्न (लक्षण-स्वरूप) को धारण करती हुई १ ब्रह्माणी, २ माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ वाराही, ६ इन्द्राणी और ७ चामुण्डा--जो सात मातायें (सप्त मातरः) अपने-अपने पतियों के रूप के अनुसार स्वरूपवाली, जो पृथक्-पृथक् दिखाई देती हैं, वे सब तुम्हारे ही अंश से बनी हैं। अतएव तुम्हारी ही अंश हैं।

दुर्गा सप्तशती में भगवती कहती हैं—

'एकैवाहं', 'जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।'

यहाँ पर उपासक केवल ब्राह्मी आदि सप्त माताओं को भगवती की अंश-रूपा मान रहा है। अतएव 'सप्त मातरः' कहा है। 'अमर-कोश' भी कहता है--

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः॥

किन्तु यन्त्र-पूजा में अष्ट-मातृकायें ली जाती हैं। आठवीं महा-लक्ष्मी लेते हैं। कोई-कोई महा-लक्ष्मी के स्थान पर चण्डिका को लेते हैं। चण्डिका और चामुण्डा के मन्त्र में भेद है। अतएव चण्डिका भी ली जाती हैं। चामुण्डा का नवार्ण मन्त्र प्रसिद्ध है। चण्डिका के मन्त्र में 'विच्चे' के स्थान पर 'स्वाहा' लगाया जाता है। कालिकार्चन में अष्ट-शक्तियों के पूजन में अपराजिता और नारसिंही ली जाती हैं, क्रम में दश महा-विद्या तथा गुरु-परम्परा से पृथकता का आ जाना स्वाभाविक है। अष्ट-शक्तियों की पूजा के साथ-साथ आठ दिशाओं में अष्ट-भैरवों की पूजा भी होती है। अष्ट-भैरव—१ असिताङ्ग, २ रुरु, ३ चण्ड, ४ क्रोध, ५ उन्मत्त, ६ कपाली, ७ भीषण और ८ संहार।

उक्त पद्य में 'अजाद्रीड्' में से अज—'ऐ' से 'ऐं' का ग्रहण कर वाग्वीज बनता है। 'विभो' पद से विभूति का ग्रहण कर विभूति--ह्रीं, पुनः 'गृहाब्ज' में से अब्ज--ऐ, द्रां, स--'ऐ' से 'ऐं' का ग्रहण

करने से 'वाग्वीज-पुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरी मता' के अनुसार भुवनेश्वरी की त्र्यक्षरी दोनों ओर वाग्वीज और बीच में माया-वीज रखकर तीन अक्षर का मन्त्र बन जाता है। यदि 'ऐ' से 'ऐं' का ग्रहण न मानें, तो 'महा-भैरव' पद में से हलन्त मकार लेकर 'ऐम्' बना सकते हैं। 'योगीन्द्रकाणां' पद में से 'इन्द्र' निकालकर 'नामैक-देशे नाम-ग्रहणम्' इस पूर्वोक्त नियम से 'इन्द्र-जनक' और 'इन्द्रावरजः' बना। इन्द्र-जनक—'क्लीं', इन्द्रावरजः—'क्लीं'। परिश्रम और खोज करने पर अन्य वीजाक्षर भी निकल सकते हैं। ॥ १५ ॥

अब भगवती भुवनेश्वरी का उपासक भगवती का ध्यान कर उसको प्रणाम करता है। 'समुद्यद्-दिवा-कृत्-सहस्राभ-भासा'—उदय-कालीन (उदय होता हुआ) दिवाकर (सूर्य) अर्थात् प्रातःकाल में उदय होते हुए हजारों सूर्यों की कान्ति (तेज-चमक) के समान अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व (ब्रह्माण्ड अथवा ब्रह्माण्डों) के अवकाश (रिक्त स्थान) को प्रकाशित कर देनेवाली; सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के बाहर-भीतर अपने प्रकाश को फैलानेवाली; 'सन्नत' (विस्तार करना—फैलाना)—हे सन्नताशेष-विश्वावकाशे ! यह भगवती के लिये सम्बोधन है।

अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् चाहम्। अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि ॥ अहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि ॥ अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥

देव्युपनिषत् के उक्त उद्धरण से ऊपर की व्याख्या की पुष्टि होती है। 'अहमादित्यैः' अर्थात् मैं आदित्यों द्वारा शोभित होती हूँ।

'लसन्मौलि-बद्धेन्दु-लेखे' यह भी सम्बोधन-पद है। अर्थात् भगवती भुवनेश्वरी के शिर पर रत्न-जटित सुवर्ण मुकुट पर इन्दु-लेखा (चन्द्रमा की कला) सुशोभित हो रही है। भाव यह है कि भगवती के शिर पर रत्नों से जड़ा हुआ सोने का मुकुट है और उसके समीप भाल-देश में चन्द्रमा की कला शोभा दे रही है।

'स-पाशांकुशाभीत्यभीष्टात्त-हस्ते' भी सम्बोधन-पद है। अर्थात् जिसके चारों हाथों में पाश, अंकुश, अभय और वर मुद्रायें शोभा दे रही हैं। भगवती के ऊपर के दाहिने हाथ में 'अंकुश' और नीचे के कर में 'अभय' (डरो मत) मुद्रा तथा ऊपर के बाँयें हाथ में 'पाश' और नीचे के हाथ में 'वर'-मुद्रा (वर माँगो, क्या चाहते हो)—इस प्रकार चार आयुध चार हाथों में हैं। 'सम्मोहन तन्त्र' में लिखा है—

दक्षिणे चांकुशं दद्यात् वामे पाशं प्रदापयेत्। वरदं वामतो दद्यात् अभयं दक्षिणे करे ॥

'समुद्यद्-दिवा-कृत्'—पद से स्पष्ट है कि प्रातः की अवस्था में प्रकृति का रूप अरुण वर्ण का होता है, अर्थात् सूर्योदय की अवस्था में संसार ही रक्त-वर्ण प्रतीत होता है। अतः सृष्टि-आम्नाय के देवताओं का ध्यान रक्त-वर्ण ही किया जाता है। भगवती भुवनेश्वरी पूर्वाम्नाय की देवता हैं और पूर्वाम्नाय सृष्टि-रूप है। लिखा भी है—

'पूर्वाम्नायः सृष्टि-रूपः स्थिति-रूपश्च दक्षिणः।'

यद्यपि इस पद्य में भगवती भुवनेश्वरी के स्तन-भार का वर्णन नहीं है, तथापि भगवती के ध्यान के दूसरे पद्यों में स्तन-भार का वर्णन आता है। यथा—

उद्यदिनद्युतिमिन्दु-किरीटां, तुङ्ग-कुचां नयन-त्रय-युक्ताम्।

अतः भुवनेश्वरी के मूल-मन्त्रों के ध्यान में स्तन-भार का वर्णन किया गया है। सृष्टि के रजोगुणात्मक होने से उसके सात्विक और तामसिक ध्यान में भी कुछ-कुछ रजोगुणात्मक भाव मिश्रित होते हैं। कुच-द्वन्द्व द्वि-विन्दु का सूचक होता है।

'लसन्मौलि-बद्धेन्दु-लेखे' से यह दिखाया गया है कि भगवती अमृत-वर्षिणी (अमृत की वर्षा करनेवाली) हैं, क्योंकि चन्द्रमा की कला उनके शिर पर है और चन्द्रमा की किरणें अमृत-मय हैं । 'इन्दुः कुमुद-बान्धवः', 'विधुः सुधांशुः'––अमरकोष । चन्द्रमा का नाम सुधांशु है, 'सुधा' अमृत का नाम है और 'अंशु' किरण का । सुधांशु––अमृत की किरणोंवाला ।

'स-पाशांकुशा' से यह दिखाया है कि भगवती सर्वदा आकर्षण (अंकुश से) और स्तम्भन (पाश से) शक्तिवाली हैं । वरद-मुद्रा से भक्तों को वर देनेवाली और अभय मुद्रा से भक्तों को अभय-दात्री (अभय देनेवाली) हैं । अभीष्ट—वर, आत्त-हस्ते—जिन्होंने ४ हाथों में ४ आयुध धारण कर रखे हैं ।

भगवती भुवनेश्वरी के प्रातः, मध्याह्न और सायं-सन्ध्या के ध्यान और मन्त्र पहले दिये जा चुके हैं । ॥ १६ ॥

भगवती भुवनेश्वरी का उपासक आगे स्तुति करता है कि 'हे माता ! इस जगत् में प्रभा–– दीप्ति, चमक, कीर्ति––यश, कान्ति––शोभा (कान्ति-द्युतिश्छविः––अमरकोष), संसार के दिन, रात्रि–– रात, सन्ध्या—दिन और रात के मिलने के समय, क्रिया–– कार्य, आशा––दिशा अथवा फल-प्राप्ति की आशा, तमिस्रा––अन्धकार से व्याप्त रात्रि (तमिस्रा तामसी रात्रिः – अमरकोष), क्षुधा– भूख, बुद्धि, मेधा––धारणा (धीर्धारणा-वती मेधा––अमरकोष), धृति––धैर्य (धीरज), वाक्—वाणी, मति–– बुद्धि की विशेषता (ज्ञान), सन्नति––नम्रता, श्रीः––लक्ष्मी (शोभा), भक्ति—किसी देवता के चरणों में, ईश्वर में, पुरुष-विशेष में या माता-पिता में विशेष अनुराग (प्रेम) को भक्ति कहते हैं (सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे––शाण्डिल्य-सूत्र), शक्ति––किसी प्रकार की सामर्थ्य तथा अन्य जितनी प्रकार की शक्तियाँ हैं, सब तुम्हारे ही भेद हैं अर्थात् उनमें तुम्हीं व्याप्त हो । वे तुमसे भिन्न नहीं हैं ।

इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी ही सबकी स्वामिनी और सर्व-शक्ति-स्वरूपिणी हैं । अपनी इष्ट-देवता के प्रति ऐसी ही भावना रखने का शास्त्रोक्त नियम है । ॥ १७ ॥

इस पद्य में भगवती भुवनेश्वरी चौदह लोकों की स्वामिनी हैं, इस भाव की पुष्टि की गई है । 'हे हरे !'––यह सम्बोधन है भगवती भुवनेश्वरी के लिए । एकाक्षर मन्त्र 'ह्रीं' प्रकृति-पुरुषात्मक या हरि-हरात्मक है अर्थात् 'हरि' और 'हर' दोनों शब्दों से 'ह्रीं' बनता है । 'हरि' का अर्थ है प्रकृति और 'हर' का है पुरुष । अतः 'हे हरे' अर्थात् प्रकृति-स्वरूपे भुवनेश्वरि !

'भेद-प्रभिन्नैः अपि स-सशक्त्याख्य-शान्तैः विन्दु-नादैः अभिन्ने । ते नमः ।'

ह्रींकार का ध्यान भ्रू-मध्य में किया जाता है । विन्दु से लेकर अर्थात् भ्रू-मध्य से लेकर ब्रह्म-रन्ध्र तक सूक्ष्म, सूक्ष्म-तर और सूक्ष्म-तम रूप से आठ वर्ण हैं । यथा—१ विन्दु, २ अर्द्ध-चन्द्र, ३ रोधिनी, ४ नाद, ५ नादान्त, ६ शक्ति, ७ व्यापिका, ८ समना, ९ उन्मनी, १० महा-विन्दु––इनमें से 'विन्दु' भ्रू-मध्य में और 'महा-विन्दु' ब्रह्म-रन्ध्र में । इन्हें छोड़कर शेष की गणना उक्त आठ वर्णों में होती है ।

उपासक आगे कहता है कि हे भगवति ! १ अतल, २ वितल, ३ सुतल, ४ नितल, ५ तलातल, ६ रसातल और ७ पाताल लोक में और सात ऊपर के १ भूः, २ भुवः, ३ स्वः, ४ जनः, ५ महः, ६ तपः और ७ सत्य लोकों में तथा सात कुल-पर्वतों––१ हिमालय, २ मलय, ३ सह्य, ४ पारियात्रिक, ५ गन्ध-मादन, ६ विन्ध्याचल और ७ मन्दराचल में तथा सात समुद्रों––१ लवण, २ इक्षु, ३ सुरा, ४ सर्पि (घृत), ५ दुग्ध, ६ दधि और ७ जल में तथा १ सूर्य, २ चन्द्र, ३ मङ्गल, ४ बुध, ५ वृहस्पति, ६ शुक्र और ७ शनि––इन सात ग्रहों में तथा सात द्वीपों––१ जम्बु, २ प्लक्ष, ३ शाल्मली, ४ कुश, ५ पुष्कर, ६ शाक

और ७ क्रौञ्च द्वीप में एवं सात धातुओं--१ त्वक्, २ असृक् (रक्त), ३ मांस, ४ मेद (चर्बी), ५ अस्थि, ६ मज्जा और ७ शुक्र में तुम व्याप्त हो।

जिस प्रकार त्रिपुरा की स्तुति में तीन-तीन वस्तुओं का उल्लेख कर उनके नाम की महिमा प्रतिपादित जाती है, उसी प्रकार सात-सात वस्तुओं के समूहों द्वारा भगवती भुवनेश्वरी की गरिमा वर्णित है। ।। १८ ।।

आगे उपासक स्तुति करता है कि हे माता! इस सारे विश्व में तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है। हे समस्ते, हे पूर्ण-ब्रह्म-स्वरूपिणि, हे निखिल-ब्रह्माण्ड-नायिके, हे समस्त-स्वरूपे! इस विश्व में जो कुछ भी जड़-चेतन वस्तु दिखाई देती है, वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं अर्थात् तुम सर्व-व्यापिनी हो।

'समस्तेषु वस्तुषु अनुस्यूत-रूपे'--अर्थात् इस संसार की समस्त वस्तुओं में तुम्हारी शक्ति अनुस्यूत है--उनके भीतर निहित है अर्थात् तुम्हारी शक्ति से ही सब पदार्थ शक्ति-मान् हैं।

श्रित-स्थूल-सूक्ष्म-स्वरूपे--तुम मूर्ति में स्थूल-स्वरूपिणी हो। 'मूर्ति' और 'यन्त्र' भगवती के स्थूल रूप हैं। 'मन्त्र' भगवती का सूक्ष्म रूप है। देवता के तीन रूप होते हैं--१ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ पर-रूप। 'पर-रूप' वासना (भावना) मय होता है। इन्हीं के अनुरूप पूजा भी तीन प्रकार की होती है--१ परा, २ अपरा, ३ परात्परा।

'हे स्मृते'--स्मृति स्वरूपे! 'स्मृति' अर्थात् धर्म-संहिता। इस अर्थ के अनुसार भगवती धर्म-स्वरूपा हैं। अथवा स्मृति का अर्थ चिन्ता या ध्यान लेने से भगवती सदैव स्मरणीया हैं।

'हे बोध-रूपे'--हे ज्ञान-स्वरूपे! अर्थात् भगवती ज्ञान-स्वरूपा हैं।

'हे अबोध-स्वरूपे'--अर्थात् भगवती के स्वरूप का किसी को ज्ञान नहीं हो सकता। ।। १९ ।।

इस पद्य में उपासक अपने को परा-पूजा का अधिकारी बनाने की प्रार्थना करता है। इस परा-पूजा में उपासक की मनोवृत्ति और प्रत्येक विचार परा-पूजा में परिणत हो जाते हैं और वह अपने दिन भर के कार्य जगदम्बा की भेंट में समर्पित कर देता है। वह प्रार्थना करता है कि हे माता! मेरे मन की सभी वृत्तियाँ—मेरे मानसिक विचार तेरी स्मृति (ध्यान) में परिणत हो जायँ। विचार करने का काम मन का है। मैं अपने मन में जो भी विचार करूँ, वह विचार तेरे ही ध्यान में बदल जाय अर्थात् मेरा मन सदा तुम्हारे ध्यान में मग्न रहे।

मनुष्य जिस बात का मन में विचार करता है, उसे मुख द्वारा बाहर प्रकाशित करता है। अत: उपासक कहता है कि मेरी 'वाक्-प्रवृत्ति'—दूसरों के साथ वार्तालाप तेरी स्तुति में बदल जाय। अर्थात् जो कुछ मैं कहूँ, वह सब तुम्हारी स्तुति हो।

मनुष्य जो बात मुख से कहता है, उसे अपने शरीर के हस्त-पादादि अङ्गों से करके दिखाता है। अतः उपासक कहता है कि मेरे शरीर के अङ्गों की प्रवृत्ति-क्रिया तुम्हारे दण्ड-वत् प्रणाम में परिणत हो जाय अर्थात् हाथ-पैरों से जो भी काम करूँ, वह सब तुम्हारी प्रणाम-क्रिया हो।

'प्रभवतीति प्रभुः ईश्वरः'--सम्बोधन में 'प्रभो' अर्थात् हे ईश्वरी, हे स्वामिनी! 'सन्ततं'—सदा, 'मे'—मेरे ऊपर, 'प्रसीद'--प्रसन्न रहो और 'क्षमस्व'--मेरे अपराधों को क्षमा करो। ।।२०।।

इस प्रकार स्तुति को पूरा कर उपासक अन्य भक्तों की जानकारी के लिए इस स्तुति के फल को अगले दो पद्यों में स्पष्ट करता है-- [देखिये पृष्ठ ४७ के नीचे]

श्री भुवनेश्वरी-रहस्य-स्तवः

पूर्व-पीठिका—

अधुना श्रृणु देवेशि ! स्तोत्रं तत्त्व-निरूपणम् ।
सर्वस्वं भुवनेश्वर्य्याः परापर - रहस्यकम् ।
यस्य कस्य न वक्तव्यं विना शिष्याय पार्वति !

विनियोग—

अस्य स्तोत्रस्य देवेशि ! ऋषिर्भैरव उच्यते ।
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं देवता भुवनेश्वरी ।।
श्रीतत्त्व-रूपिणी वीजं माया ह्रैं शक्तिरुच्यते ।
ह्रः कीलकं समाख्यातं भुवनेश्याः महेश्वरि !
धर्मार्थ - काम - मोक्षार्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।।

ध्यान—उद्यत्-सूर्य-सहस्राभां शशाङ्क - कृत - शेखराम् ।
पद्मासनां स्मेर-मुखीं सूर्येन्द्वग्नि-विलोचनाम् ।
रक्त-वस्त्र-धरां पद्म-पाशांकुश-वरान् करैः,
दधतीं भुवनेशानीं ध्यायेत् हृत् - पङ्कजे शिवाम् ।।

[पृष्ठ ४६ का शेष]

फल-श्रुति—१

हृल्लेखा (ह्रीं) नामक मन्त्र के जप और भगवती भुवनेश्वरी की पूजा के बाद इस स्तुति का परम आदर अर्थात् श्रद्धा के साथ जो पाठ करता है, वह इस संसार में परम ऐश्वर्य को प्राप्त कर अर्थात् सब प्रकार के वैभवों का भोग कर मरने के वाद परम पद को प्राप्त करता है अर्थात् मोक्ष पाता है ।

'परस्य धाम्नः शुद्धं पदं'—निष्कल ब्रह्म में लीन होता है । 'परम धाम' का अर्थ है उत्कृष्ट तेज । अथवा 'परम धाम' से 'परम पद' का आशय है, जिसके सम्बन्ध में श्रुति का वचन है—'तद् विष्णोः परमं पदम् ।'

फल-श्रुति—२

'फल-स्तुति के इस दूसरे पद्य के अनुसार हृल्लेखा (ह्रीं) स्वरूपिणी श्री भगवती भुवनेश्वरी की पूजा, मन्त्र-जप, पाठ और होम की समस्त विधि को अपना करसाधक योगी बनकर मन को 'नियत' करेगा अर्थात् लगायेगा, वही सम्पूर्ण भोगों का भोग करनेवाला बनेगा । 'योगी' शब्द के दो अर्थ हैं—
एक तो 'योगः कर्मसु कौशलं' अर्थात् उपासना-विधि के अनुसार कर्म करने की कुशलता और दूसरा 'योगश्चित्त-वृत्ति- निरोधः' अर्थात् उपासना करते समय चित्त की वृत्तियों को रोकना अर्थात् मन इधर-उधर न दौड़ने पाये । इस प्रकार जो योग-पूर्वक उपासना करता रहेगा, वह सभी भोगों को भोग कर शरीर-त्याग के बाद परं पद मोक्ष को प्राप्त होगा ।

रहस्य-स्तव–

वाग्भवं तव शिवे ! प्रिय-वीजं ध्यायते यदि नरोऽनल-चेताः ।
तस्य त्वच्चरण-पूजन - मात्राज्जायते हि कमलैव तदानीम् ।।१।।
शक्ति-बीजमनघं सुधाकरं साधको यदि जपेद् हृदि भक्त्या ।
तस्य स्वर्ग-ललना चरणाब्जौ रञ्जयन्ति मुकुटैर्मणि-युक्तैः ।।२।।
माया-वीजं यो जपेत् ते महेशि ! तत्त्वं मन्त्री भक्तिमान् मुक्ति-कांक्षी ।
त्वत्-सादृश्यात् याति त्वद्धाम रम्यं नाक-स्त्रीभिर्वीज्यमानः सु-तालैः ।।३।।
त्वन्मन्त्र-मध्ये भुवनेश्वरीति यो नाम रम्भा-परिरम्भ-कांक्षी ।
ध्यायेत् हृदब्जे शशि-खण्ड-चूडे स याति रम्भां परिरभ्य नाकम् ।।४।।
मायाऽर्णं यः साधको ध्यायतेऽम्ब ! तस्य ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रादयस्ते ।
देवाः पादौ रंजयन्ति स्म नित्यं मौलिस्थैस्तैरिन्द्र-नीलादि-रत्नैः ।।५।।
तत्त्व-रूपिणि ! भवन्मनु - मध्ये यो जपेत् तव सुधाकरमाख्यम् ।
देवि ! तस्य खलु साधक-राज्ञो विश्वमेतदखिलं वशमेति ।।६।।
माया-वीजं देवि ! मन्त्रान्त-संस्थं रात्रौ वह्निं ध्यायते यो हृदन्तः ।
भूमौ भूयास्तस्य पादाब्ज-युग्मं रंजन्ति स्वैर्मौलि-रत्नांशुभिस्तैः ।।७।।

फल-श्रुति

इतीदं परमं तत्त्वं तत्त्व-विद्यास्तवोत्तमम् ।
रहस्यं भुवनेश्वर्याः सर्वस्वं मम पार्वति ।।८।।
सम्पूज्य भुवनेशानीं यः पठेत् साधकोत्तमः ।
तस्याऽष्टौ सिद्धयो देवि ! कर-संस्था महेश्वरि ।।९।।
अस्य स्तवस्य देवेशि ! प्रभावं कथितं विभुः ।
नास्म्यहं भुवनेश्वर्याः पंच-वक्त्रैर्न संशयः ।।१०।।

।। श्री भुवनेश्वरी-रहस्ये श्रीभुवनेश्वर्याः रहस्य-स्तवः ।।

हिन्दी रूपान्तर

श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य-स्तवः

श्री भैरव बोले--हे देवेशि ! अब भुवनेश्वरी के सर्वस्व-स्वरूप तत्त्व-निरूपण करनेवाले अत्यन्त रहस्य-मय स्तोत्र को सुनो। दीक्षित न हो, ऐसे किसी व्यक्ति को इसे न बताना चाहिये।

विनियोग--इस स्तोत्र के ऋषि भैरव, छन्द अनुष्टुप्, देवता भुवनेश्वरी, बीज 'ह्रीं', शक्ति 'ह्रूँ', कीलक 'ह्रः' और विनियोग धर्मार्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि के लिए है।

ध्यान--उदीयमान सहस्र करोड़ों सूर्य की कान्तिवाली, ललाट पर चन्द्रमा को धारण किए, पद्मासना, मुस्कान-युक्त मुखवाली, सूर्य-चन्द्र-अग्नि के समान तीन नेत्रोंवाली, रक्त-वस्त्रा, चार हाथों में कमल, पाश, अंकुश और वर-मुद्रा धारण करनेवाली भुवनेश्वरी को अपने हृदय-कमल पर विराजमान ध्यान करना चाहिये।

रहस्य-स्तोत्र - हे शिवे ! सन्तप्त चित्तवाला जो व्यक्ति तुम्हारे प्रिय वाग्भव वीज (ऐं) का ध्यान करता है, वह तुम्हारे चरणों का पूजन करने मात्र से शीतलता को प्राप्त करता है ॥१॥

यदि साधक अमृत-सागर जैसे पवित्र शक्ति-वीज (क्लीं) को भक्तिपूर्वक अपने हृदय में जपता है, तो मणि-जटित-मुकुटों से युक्त अप्सरायें उसके चरणों की सेवा करती हैं ॥२॥

हे महेशि ! जो साधक तुम्हारे तत्त्व-स्वरूप माया-वीज (ह्रीं) को भक्तिपूर्वक मोक्ष की कामना से जपता है, वह तुम्हारी कृपा प्राप्त कर अप्सराओं का सङ्गीत सुनता हुआ तुम्हारे सुन्दर धाम को जाता है ॥३॥

अपने हृदय-कमल में, जहाँ शिव विराजमान हैं, तुम्हारे मन्त्र के मध्य में 'भुवनेश्वरी' नाम को जोड़कर जो ध्यान करता है, वह रम्भा अप्सरा से अभिनन्दित होकर स्वर्ग को जाता है ॥४॥

हे अम्ब ! जो माया-वीज (ह्रीं) का ध्यान करता है, उसका सम्मान ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सभी देवता करते हैं, और अपने मुकुट में जड़े हुए इन्द्रनील आदि रत्नों से उसके पैरों को सुशोभित कर देते हैं ॥५॥

हे तत्त्व-स्वरूपिणि ! तुम्हारे मन्त्र के मध्य में अमृत-सागर स्वरूप तुम्हारे नाम का जो जप करता है, उस साधकेश्वर के वश में यह सारा विश्व हो जाता है ॥६॥

हे देवि ! रात्रि में जो मन्त्र के अन्त में माया-वीज (ह्रीं) और वह्नि)-वीज (रं) का अपने हृदय में ध्यान करता है, उसके चरण-कमलों को पृथ्वी के शासक लोग अपने मुकुट-रत्नों के प्रकाश से सुशोभित कर देते हैं ॥७

फल-श्रुति-- हे पार्वति ! यह तत्त्व-विद्या से युक्त स्तोत्र अति उत्तम और गूढ़ तत्त्व से युक्त है। यह भुवनेश्वरी का रहस्य और मेरा सर्वस्व है ॥८॥

भुवनेश्वरी का पूजन कर जो उत्तम साधक इसका पाठ करता है, हे देवि, महेश्वरि ! आठो सिद्धियाँ उसके हाथ में रहती हैं ॥९॥

हे देवेशि ! भुवनेश्वरी के इस स्तोत्र का प्रभाव मैं अपने पाँच मुखों से भी कहने में समर्थ नहीं हूँ अर्थात् यह बड़ा ही प्रभावशाली है ॥१०॥

आनन्द-मयी श्रीभुवनेश्वरी-स्तवः

अथानन्द-मयीं साक्षाच्छब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणीम् ।
ईडे सकल-सम्पत्त्यै जगत्-कारणमम्बिकाम् ॥१॥

आद्यामशेष - जननीमरविन्द - योनेर्विष्णोः शिवस्य च वपुः-प्रतिपादयित्रीम् ।
सृष्टि-स्थिति-क्षय-करीं जगतां त्रयाणां स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके ! त्वाम् ॥२॥
पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुतां वरेण होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्त्ति-भाजः ।
देवस्य मन्मथ - रिपोरपि शक्ति-मत्ता-हेतुस्त्वमेव खलु पर्वत-राज-पुत्रि ! ॥३॥
त्रि-स्रोतसः सकल-देव-समर्च्चिताया वैशिष्ट्य - कारणमवैमि तदेव मातः !
त्वत् - पाद - पङ्कज - पराग-पवित्रितासु शम्भोर्जटासु सततं परिवर्तनं यत् ॥४॥
आनन्दयेत् कुमुदिनीमधिपः कलानां नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकत्र मोदन-विधौ परमे क इष्टे त्वं तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्व-दृष्टया ॥५॥
आद्याऽप्यशेष - जगतां नव - यौवनाऽसि शैलाधिराज-तनयाऽप्यति-कोमलाऽसि ।
त्रय्याः प्रसूरपि तथा न समोक्षिताऽसि ध्येयाऽसि गौरि ! मनसो न पथि स्थिताऽसि ॥६॥
आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद् दुरापं तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।
नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ! ये त्वां निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ॥७॥
कर्पूर-चूर्ण-हिम-वारि-विलोडितेन ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुगन्धि-गन्धैः ।
आराधयन्ति हि भवानि ! समुत्सुकास्त्वां ते खल्वशेष-भुवनाधि-भुवः प्रथन्ते ॥८॥
आविश्य मध्य-पदवीं प्रथमे सरोजे सुप्ताहि-राज-सदृशो विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लता-वलय - विभ्रममुद्वहन्ती पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ॥९॥
तन्निर्गतामृत-रसैः परिषिक्त-गात्र - मार्गेण तेन निलयं पुनरप्यवाप्ता ।
येषां हृदि स्फुरसि जातु न ते भवेयुर्मातर्महेश्वर - कुटुम्बिनि ! गर्भ-भाजः ॥१०॥
आलम्बि - कुण्डल-भरामभिराम-वक्त्रामापीवर-स्तन-तटीं तनु-वृत्त-मध्याम् ।
चिन्ताक्ष-सूत्र-कलशालिखिताढ्य-हस्तामावर्त्तयामि मनसा तव गौरि ! मूर्तिम् ॥११॥
आस्थाय योगमवजित्य च वैरि-षट्कमाबद्ध्य चेन्द्रिय-गणं मनसि प्रसन्ने ।
पाशांकुशाभय-वराढ्य-करां सु-वक्त्रामालोकयन्ति भुवनेश्वरि ! योगिनस्त्वाम् ॥१२॥
उत्तप्त-हाटक - निभा - करिभिश्चतुर्भिरावर्तितामृत - घटैरभिषिच्य-माना ।
हस्त-द्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती पद्माऽपि साऽभय-वरा भवसि त्वमेव ॥१३॥

अष्टाभिरुग्र - विविधायुध - वाहिनीभिर्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वा-दल-द्युतिरमर्त्य-विपक्ष-पक्षान् न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि, भवानि ! दुर्गा ॥१४॥

आर्विनिदाघ-जल-शीकर-शोभि-वक्त्रां गुञ्जा-फलेन परिकल्पित-हार-यष्टिम् ।
पीतांशुकामसित-कान्तिमनङ्ग-तन्द्रामाद्यां पुलिन्द-तरुणीमसकृत् स्मरामि ॥१५॥

हंसैर्गति - क्वणित - नूपुर - दूर - दृष्टे मूर्तैरिवार्थ - वचनैरनुगम्य - मानौ ।
पद्माविवोर्ध्व-मुख-रूढ-सुजात-नालौ श्रीकण्ठ-पत्नि ! शिरसा विदधे तवांघ्री ॥१६॥

द्वाभ्यां समीक्षितुमतृप्तिमतेव दृग्भ्यात्मुपाटच भाल-नयनं वृष-केतनेन ।
सान्द्रानुराग-तरलेन निरीक्ष्यमाणे जङ्घे शुभे अपि भवानि ! तवानतोऽस्मि ॥१७॥

ऊरू स्मरामि जित-हस्ति-करावलेपौ स्थौल्येन मार्दव-तया परिभूत-रम्भौ ।
श्रोणी-भरस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौ स्तम्भाविवाङ्ग वयसा तव मध्यमेन ॥१८॥

श्रोण्यौ स्तनौ च युग-पत् प्रथयिष्यतोच्चैर्बाल्यात् परेण वयसा परिहृष्ट-सारौ ।
रोमावली-विलसितेन विभाव्य-मूर्ति मध्यं तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥१९॥

सख्यः स्मरस्य हर-नेत्र-हुताश-शान्त्यै लावण्य - वारि-भरितं नव-यौवनेन ।
आपाद्य दत्तमिव पल्लवमप्रविष्टं नाभिं कदापि तव देवि ! न विस्मरेयम् ॥२०॥

ईशेऽपि गेह-पिशुनं भसितं दधाने काश्मीर-कर्दममनु-स्तन - पङ्कजे ते ।
स्नातोत्थितस्य करिणः क्षण-लक्ष्य-फेनौ सिन्दूरितौ स्मरयतः स-मदस्य कुम्भौ ॥२१॥

कण्ठातिरिक्त-गलदुज्ज्वल-कान्ति-धारा-शोभौ भुजौ निज-रिपोर्मकर-ध्वजेन ।
कण्ठ-ग्रहाय रचितौ किल दीर्घ-पाशौ मातर्मम स्मृति-पथं न विलंघयेताम् ॥२२॥

नात्यायतं रचित-कम्बु-विलास-चौर्यं भूषा - भरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठं मनोहर-गुणं गिरि-राज-कन्ये ! संचिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ॥२३॥

अत्यायताक्षमभिजात - ललाट-पट्टं मन्द - स्मितेन दर-फुल्ल-कपोल-रेखम् ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नत - दीर्घ-नासं यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब ! स एव जातः ॥२४॥

आविस्तुषार-कर-लेखमनल्प-गन्ध - पुष्पोपरि भ्रमदलि - व्रज - निर्विशेषम् ।
यश्चेतसा कलयते तव केश-पाशं स्वयं गलति देवि ! पुराण - पाशः ॥२५॥

श्रुति-सुचरित-पाकं श्रीमतां स्तोत्रमेतत् पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पाद-नम्र-क्षितिप-मुकुट-लक्ष्मीर्लक्षणानां चिराय ॥२६॥

॥ श्री रुद्रयामले तन्त्रे आनन्द-मयी श्रीभुवनेश्वरी-स्तवः ॥

श्री भुवनेश्वरी-महा-स्तोत्रम्

ॐ चञ्चन्मौक्तिक-हेम-मण्डन - युता माताऽति-रक्ताम्बरा,
तन्वङ्गी नयन-त्रयाति-रुचिरा बालार्क-वद्-भासुरा ।
या दिव्यांकुश-पाश-भूषित-करा देवी सदा भीतिहा,
चित्तस्था भुवनेश्वरी भवतु नः सेयं मुदः सर्वदा ॥१॥
कर्ण-स्वर्ण-विलोल - कुण्डल-धरामापीन-वक्षोरुहाम्,
मुक्ता-हार-विभूषणां परिलसद्धम्मिल्ल-सन्मल्लिकाम् ।
लीला-लोलित-लोचनां शशि-मुखीमाबद्ध-काञ्ची-स्रजम्,
दीव्यन्तीं भुवनेश्वरीमनु - दिनं वन्दामहे मातरम् ॥२॥
ऐन्दव्या कलयावतंसित-शिरो विस्तारि नादात्मकम्,
तद्रूपं जननि ! स्मरामि सततं सन्मात्रमेकं तव ।
यत्रोदेति पराऽभिधा भगवती भासां हि तासां पदम्,
पश्यन्तीमनु - मध्यमा विहरति स्वैरं च सा वैखरी ॥३॥
आदि-क्षान्त-विलास-लालस-तया तासां तुरीया तु या,
क्रोडी-कृत्य जगत्-त्रयं विजयते वेदादि-विद्या-मयी ।
तां वाचं मयि सम्प्रसादय सुधा-कल्लोल-कोलाहल-,
क्रीडाकर्णन-वर्णनीय-कविता-साम्राज्य - सिद्धि-प्रदाम् ॥४॥
कल्पादौ कमलासनोऽपि कलया विद्धः कया-चित् किल,
त्वां ध्यात्वांकुरयां चकार चतुरो वेदाश्च विद्याश्च ताः ।
तन्मातर्ललिते ! प्रसीद सरलं सारस्वतं देहि मे,
यस्यामोदमुदीरयन्ति पुलकैरन्तर्गता देवताः ॥५॥
मातर्देह - भृतामहो धृति-मयी नादैक - रेखा-मयी,
सा त्वं प्राण-मयी हुताशन - मयी विन्दु - प्रतिष्ठा-मयी ।
तेन त्वां भुवनेश्वरीं विजयिनीं ध्यायामि जायां विभोः,
त्वत्-कारुण्य-विकाश - पुण्य-मतयः खेलन्तु मे सूक्तयः ॥६॥
त्वामश्वत्थ - दलानुकार - मधुरामाधार-बद्धोदराम्,
संसेवे भुवनेश्वरीमनु - दिनं वाग्देवतामेव ताम् ।

तन्मे शारद - कौमुदी - परिचयामोदं सुधा-सागर—,
स्वैरोज्जागर-वीचि - विभ्रम - जितो दीव्यन्तु दिव्या गिरः ॥७॥
लेख-प्रस्तुत - वेद्य - वस्तु-सुरभि-श्रीपुस्तकोत्तंसितो,
मातः ! स्वस्ति-कृदस्तु मे तव करो वामोऽभिरामः श्रिया ।
सद्यो विद्रुम - कन्दली-सरलता - सन्दोह-सान्द्रांगुलिः,
मुद्रां बोध - मयीं दधत् तदपरोऽप्यास्तामपास्त - भ्रमः ॥८॥
मातः ! पातक-जाल-मूल-दलन - क्रीडा - कठोरा दृशः,
कारुण्यामृत-कोमलास्तव मयि स्फूर्जन्तु सिद्ध्यूर्जिताः ।
आभिः स्वाभिमत - प्रबन्ध-लहरी - साकूत - कौतूहला—,
ऽश्रान्त-स्वान्त-चतुर्मुखोचित-गुणोद्गारां करिष्ये गिरम् ॥९॥
त्वामाधार-चतुर्दलाम्बुज - गतां वाग्वीज-गर्भे यजे,
प्रत्यावृत्तिभिरादिभिः कुसुमितां माया-लतामुन्नताम् ।
चूडा-मूल - पवित्र-पत्र - कमल-प्रेङ्खोल-खेलत्-सुधा—,
कल्लोलाकुल - चक्र-चंक्रम-चमत्कारैक-लोकोत्तराम् ॥१०॥
सोऽहं त्वत्-करुणा-कटाक्ष-शरणः पश्चाध्व-सञ्चारतः,
प्रत्याहृत्य मनो वसामि रसना रङ्गं ममालिङ्गतु ।
श्रीसर्वज्ञ - विभूषणी-कृत-कला-निष्यन्द-मानामृत—,
स्वच्छन्द-स्फटिकाद्रि-सान्द्रित-पयः शोभा-वती भारती ॥११॥
मातर्मातृकया विवर्भितमिदं गर्भी - कृतानाहत—,
स्वच्छन्द-ध्वनि-पेयमध्वनि रतं चन्द्रार्क-निद्रा-गिरौ ।
संसेवे विपरीत-रीति-रचनोच्चारादकारावधि,
स्वाधीनामृत - सिन्धु-बन्धुरमहो माया-मयं ते महः ॥१२॥
तस्मान्नन्दन-चारु - चन्दन - तरुच्छायासु पुष्पासव—,
स्वैरास्वादन-मोद-मान-मनसामुद्दाम - वाम-भ्रुवाम् ।
वीणा-भङ्गि-तरङ्गित-स्वर-चमत्कारोऽपि सारोज्झितो,
येन स्यादिह देहि मे तदभितः सञ्चारि सारस्वतम् ॥१३॥
आधारे हृदये शिखा-परिसरे सन्धाय मेधा-मयीम्,
त्रेधा बीज-तनू-मनून-करुणा पीयूष-कल्लोलिनीम् ।

त्वां मातर्जपतो निरंकुश-निजाद्वैतामृतास्वादन—,
प्रज्ञाम्भश्चुलुकैः स्फुरन्तु पुलकैरङ्गानि तुङ्गानि मे ।।१४।।
वाणी-वीजमिदं जपामि परमं तत्-काम-राजाभिधम्,
मातः ! सान्त-परं विसर्ग-सहितौकारोत्तरं तेन मे ।
दीर्घान्दोलित-मौलि-कीलित-मणि-प्रारब्ध-नीराजनैः,
धीरैः पीत-रसा निरन्तरमसौ वाग्-जृम्भतामद्भुता ।।१५।।
चूडा-चन्द्र-कला—निरन्तर-गलत्-पीयूष-विन्दु-श्रिया,
सन्देहोचितमक्ष - सूत्र - वलयं या विभ्रती निर्भरम् ।
अन्तर्मन्त्र-मयं स्वमेव जपसि प्रत्यक्ष - वृत्यक्षरम्,
सा त्वं दक्षिण-पाणिनाऽम्ब ! वितर श्रेयांसि भूयांसि मे ।।१६।।
बद्ध्वा स्वस्तिकमासनं सित-रुचिच्छेदावदातच्छवि—,
श्रेणी-श्री-सुभगं भविष्णु सततं व्याजृम्भ-माणेऽम्बुजे ।
दीव्यन्तीमधि-वाम-जानु-रुचिरं न्यस्तेन हस्तेन ताम्,
नित्यं पुस्तक - धारण-प्रणयिनीं सेवे गिरामीश्वरीम् ।।१७।।
तन्मे विश्व-पथीन - पीन-विलसन्निःसीम-सारस्वत—,
स्रोतो-वीचि-विचित्र-भङ्गि-सुभगा विभ्राजतां भारती ।
यामाकर्ण्य विघूर्ण-मान-मनसः प्रेङ्खोलितैर्मौलिभिः,
मीलद्भिर्नयनाञ्चलैः सु-मनसो निन्देयुरिन्दोः कलाम् ।।१८।।
आदौ वाग्भवमिन्दु-विन्दु-मधुरं क्षान्ते च कामात्मकम्,
योगान्ते कषयोस्तृतीयमिति ते वीज-त्रयं ध्यायता ।
सार्द्धं मातृकया विलोम-विषमं सन्धाय बन्धच्छिदा,
वाचान्तर्गतया महेश्वरि ! मया मात्रा-शतं जप्यते ।।१९।।
तत्-सारस्वत - सार्वभौम-पदवी सद्यो मम द्योतताम्,
यत्राज्ञा-विहितैर्महा-कवि-शतैः स्फीतां गिरं चुम्बताम् ।
चैत्रोन्मीलित-केलि-कोकिल-कुहू-कारावताराञ्चित—,
श्लाघा-सिञ्चित-पञ्चम-श्रुति-समाहारोऽपि भारोपमः ।।२०।।
वाग्वीजं भुवनेश्वरीं वद वदेत्युच्चार्य वाग्वादिनीम्,
स्वाहा वर्ण-विशीर्ण-पातक-भरां ध्यायामि नित्यां गिरम् ।

वीणा-पुस्तकमक्ष-सूत्र - वलयं व्याजृम्भमम्भोरुहम्,
विभ्राणामरुणांशुभिः कर-तलैराविर्भवद्-विभ्रमाम् ।।२१।।
तन्मातः ! कृपया तरङ्ग-यतरां विद्याऽऽधिपत्यं मयि,
ज्योत्स्ना-सौरभ-गौर-कीर्ति-कविता-सेव्यैक-सिंहासनम् ।
कालाग्न्यादि-शिवावसान-भवन-प्राग्-भार-कुक्षिम्भरि—,
प्रज्ञाम्भः-परिपाक-पीवर-पराऽऽनन्द-प्रतिष्ठास्पदम् ।।२२।।
लेखाभिस्तुहिन-द्युतेरिव कृतं वाग्बीजमुच्चैः स्फुरत्,
ताराकार-कराल - बिन्दु-परितो माया त्रिधा वेष्टितम् ।
पूर्णेन्दोरुदरे तदेतदखिलं पीयूष - गौराक्षरम्,
स्रोतः सम्भ्रम-सम्भृतं स्मरति यो जिह्वाञ्चले निश्चलः ।।२३।।
तस्य त्वत्-करुणा-कटाक्ष-कणिका-संक्रान्ति-मात्रादपि,
स्वान्ते शान्तिमुपैति दीर्घ-जडता जाग्रद्-विकाराग्रणीः ।
तस्मादाशु जगत् - त्रयाद्भुत-रसाद्वैत-प्रतीति-प्रदम्,
सौरभ्यं परमभ्युदेति वदनाम्भोजे गिरां विभ्रमैः ।।२४।।

आद्यो मौलिरथापरो मुखमि-ई नेत्रे च कर्णावु-ऊ,
नासा-वंश-पुटे ऋ-ॠ तदनुजौ वर्णौ कपोल-द्वयम् ।
दन्ताश्चोर्ध्वमधस्तथौष्ठ-युगलं सन्ध्यक्षराणि क्रमात्,
जिह्वा-मूलमुदग्र - बिन्दुरपि ग्रीवा विसर्गो स्वरः ।।२५।।
कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदितरो वर्गश्च वामो भुजः,
टादिस्तादिरनु-क्रमेण चरणौ कुक्षि-द्वयं ते प-फौ ।
वंशः पृष्ठ-भवोऽथ नाभि-हृदये बादि-त्रयं धातवो,
याद्याः सप्त-समीरणश्च स-परः क्षः क्रोध इत्यम्बिके ।।२६।।
एवं वर्ण-मयं वपुस्तव शिवे ! लोक-त्रय-व्यापकम्,
योऽहं - भावनया भजत्यवयवेष्वारोपितैरक्षरैः ।
मूर्तो-भूय दिनावसान-कमलाकारैः शिरः शायिभिः,
तं विद्याः समुपासते कर-तलैर्दृष्टि-प्रसादोत्सुकाः ।।२७।।
ये जानन्ति जपन्ति सन्ततमभि-ध्यायन्ति गायन्ति वा,
तेषामास्यमुपास्यते मृदु - पद - न्यासैर्विलासैर्गिराम् ।

किं च क्रीडति भूर्भुवः स्वरभितः श्रीचन्दन-स्यन्दिनी,
कीर्तिः कार्तिक-रात्रि-कैरव-सभा-सौभाग्य-शोभा-करी ॥२८॥

माया - बीज - विदर्भितं पुनरिदं श्रीकूर्म-चक्रोदितम्,
दीपाम्नाय - विदो जपन्ति खलु ये तेषां नरेन्द्राः सदा ।
सेवन्ते चरणौ किरीट-वलभी-विश्रान्त-रत्नांकुर—,
ज्योत्स्ना - मेदुर-मेदिनी-तल-रजो-मिश्राङ्गराग-श्रियः ॥२९॥

श्री-बीजं सकलाक्षरादिषु पुनः क्रोधाक्षरान्ते भवे—,
देवं यो भजतेऽम्ब ! ते तनुमिमां तस्याग्रतो जाग्रती ।
लक्ष्मीः सिन्धुर-दान-गन्ध-लहरी-लोभान्ध-पुष्पन्धय—
श्रेणी - बन्धुर - शृङ्खला-नियमितेवापैति नैव क्वचित् ॥३०॥

यस्त्वां विद्रुम-पल्लव-द्रव-मयीं लेखामिवालोहिताम्,
आत्मानं परितः स्फुरत् - त्रिवलयां मायामभि-ध्यायति ।
तस्मै निन्दित - चन्दनेन्दु-कदली-कान्तार-हार-स्रजो,
निःश्वास-भ्रम-वाष्प-दाह-गहना मूर्च्छन्ति तास्ताः स्त्रियः ॥३१॥

मातः ! श्रीभग-मालिनीत्यभिधया दिव्यागमोत्तंसिताम्,
त्वामानन्द-मयीमनु - स्मरति यस्तं नाम वाम-भ्रुवः ।
बाहु-स्वस्तिक-पीडितैः स्तन-तटैर्दैन्याश्चितैश्चाटुभिः,
नीरन्ध्रैः पुलकांकुरैर्मुकुलितैर्ध्यायन्ति नेत्राञ्चलैः ॥३२॥

यस्त्वां ध्यायति राग-सागर-तरत्-सिन्दूर-नौकान्तर—,
स्वैरोज्जागर-पद्म - राग-नलिनी - पुष्पासनाध्यासिनीम् ।
बालादित्य-सपत्न - रत्न-रुचिर-प्रत्यङ्ग-भूषा-रुचि—,
श्रेणी - सम्मिलिताङ्ग-राग-वसनास्तस्य स्मरन्त्यङ्गनाः ॥३३॥

कर्पूरं कुमुदाकरं कमलिनी - पत्रं कला-कौशलम्,
कूजत्-कोकिल-कामिनी - कुल - कुहू-कल्लोल-कोलाहलम् ।
शङ्कन्ते प्रलयानल - स्मर-महापस्मार-वेगातुराः,
कम्पन्ते निपतन्ति हन्त न गिरं मुञ्चन्ति शोचन्ति च ॥३४॥

श्रीमृत्युञ्जय-नाम-धेय-भगवच्चैतन्य - चन्द्रात्मिके,
ह्रींकारि ! प्रथमातमांसि दलय त्वं हंस - सञ्जोविनि !

जीवं प्राण-विजृम्भ-माण-हृदय-ग्रन्थि-स्थितं मे कुरु,
त्वां सेवे निज-बोध-लाभ-रभसा स्वाहा-भुजामीश्वरीम् ।।३५।।

एवं त्वाममृतेश्वरीमनु-दिनं राका-निशा-कामुक—,
स्वान्ते सन्तत-भास-मान-वपुषं साक्षाद् यजन्ते तु ये ।

ते मृत्योः कवली-कृत-त्रि-भुवनाभोगस्य मौलौ पदम्,
दत्वा भोग-महोदधौ निरवधि क्रीडन्ति तैस्तैः सुखैः ।।३६।।

जाग्रद्-बोध-सुधा-मयूख-निचयैराप्लाव्य सर्वा दिशो,
यस्याः काऽपि कला कलङ्क-रहिता षट्-चक्रमाक्रामति ।

दैन्य-ध्वान्त - विदारणैक - चतुरा वाचं परां तन्वती,
सा नित्या भुवनेश्वरी विहरतां हंसीव मन्मानसे ।।३७।।

त्वं माता-पितरौ त्वमेव सुहृदस्त्वं भ्रातरस्त्वं सखा,
त्वं विद्या-त्वमुदार-कीर्ति-चरितं त्वं भाग्यमत्यद्भुतम् ।

किं भूयः सकलं त्वमीहितमिति ज्ञात्वा कृपा-कोमले,
श्रीविश्वेश्वरि ! सम्प्रसीद शरणं मातः ! परं नास्ति मे ।।३८।।

श्रीसिद्धि-नाथ इति कोऽपि युगे चतुर्थे, प्राविर्बभूव - करुणा - वरुणालयेऽस्मिन् ।
श्रीशम्भुरित्यभिधया स मयि प्रसन्नं, चेतश्चकार सकलागम-चक्रवर्ती ।।३९।।
तस्याऽऽज्ञया परिणतान्वय - सिद्ध - विद्या - भेदास्पदैः स्तुति-पदैर्वचसां विलासैः ।
तस्मादनेन भुवनेश्वरि ! वेद - गर्भे ! सद्यः प्रसीद वदने मम सन्निधेहि ।।४०।।
येषां परं न कुल-दैवतमम्बिके ! त्वं, तेषां गिरा मम गिरो न भवन्तु मिश्राः ।
तैस्तु क्षणं परिचिते विषयेऽपि वासो, माऽभूत् कदाचिदपि सन्ततमर्थये त्वाम् ।।४१।।
श्रीशम्भु-नाथ ! करुणाकर ! सिद्धि-नाथ ! श्रीसिद्ध-नाथ ! करुणाकर ! शम्भु-नाथ !
सर्वापराध - मलिनेऽपि मयि प्रसन्नं, चेतः कुरुष्व शरणं मम नान्यदस्ति ।।४२।।
इत्थं प्रति - क्षणमुदश्रु - विलोचनस्य, पृथ्वी - धरस्य पुरतः स्फुटमाविरासीत् ।
दत्वा वरं भगवती हृदयं प्रविष्टा, शास्त्रैः स्वयं नव-नवैश्च मुखेऽवतीर्णा ।।४३।।
वाक् - सिद्धिमेवमतुलामवलोक्य नाथः, श्रीशम्भुरस्य महतीमपि तां प्रतिष्ठाम् ।
स्वस्मिन् पदे त्रिभुवनागम - वन्द्य - विद्या - सिंहासनैक-रुचिरे सुचिरं चकार ।।४४।।

भूमौ शय्या वचसि नियमः कामिनीभ्यो निवृत्तिः,
प्रातर्जाती - विटप-समिधा दन्त - जिह्वा-विशुद्धिः ।
पत्रावल्यां मधुरमशनं ब्रह्म - वृक्षस्य पुष्पैः,
पूजा - होमौ कुसुम - वसनालेपनान्युज्ज्वलानि ।।४५।।

इत्थं मास-त्रयमविकलं यो व्रतस्थः प्रभाते,
मध्याह्ने वाऽस्तमित - समये कीर्तयेदेक-चित्तः ।
तस्योल्लासैः सकल - भुवनाश्चर्य - भूतैः प्रभूतैः,
विद्याः सर्वाः सपदि वदने शम्भु-नाथ-प्रसादात् ।।४६।।

व्रतेन हीनोऽप्यनवाप्त-मन्त्रः, श्रद्धा-विशुद्धोऽनुदिनं पठेद्यः ।
तस्यापि वर्षादनवद्य-सद्यः, कवित्व-हृद्याः प्रभवन्ति विद्याः ।।४७।।

कोऽप्यचिन्त्यः प्रभावोऽस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः ।
श्रीशम्भोराज्ञया सर्वाः सिद्धयोऽस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।।४८।।

।।श्रीपृथ्वीधराचार्य-विरचितं श्रीभुवनेश्वरी-महा-स्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

हिन्दी-रूपान्तर

श्री भुवनेश्वरी-महा-स्तोत्र

जो देवी दिव्य अंकुश और पाश से विभूषित हाथोंवाली हैं, चमकीले मोती और स्वर्ण-मण्डित आभूषणों से युक्त हैं, अत्यन्त लाल रङ्ग के वस्त्र धारण किए हैं, सुन्दर अङ्गोंवाली हैं, तीन नेत्रों से बड़ी मनोरमा हैं, बाल-सूर्य जैसे तेजवाली हैं और सदा भय को दूर करती हैं, वही माता भुवनेश्वरी हृदय में रहती हुई हम पर सदा प्रसन्न रहें ।।१

कानों में जो चंचल स्वर्ण-कुण्डल धारण किए हैं, समुन्नत पयोधरों से सुशोभिता हैं, मोतियों के हार से विभूषिता हैं, सुगन्धित पुष्प-माला से जो शोभायमाना हैं, लीला-पूर्ण भावों से सुन्दर नेत्रोंवाली हैं, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली हैं और कटि में सुन्दर मेखला बाँधे हुए हैं, प्रकाशमाना ऐसी माता भुवनेश्वरी की मैं नित्य वन्दना करता हूँ ।।२

हे जननि ! मैं तुम्हारे उस स्वरूप का प्रतिदिन ध्यान करता हूँ, जिसके मस्तक पर चन्द्रमा की कला विराजमाना है । वह स्वरूप सर्व-व्यापक है, उच्चारित होते हुए नाद के समान है और उसकी शोभा अति श्रेष्ठ है । वह सद्-भाव-रूपवाला अद्वितीय ही है । उस रूप में 'परा'-नामवाली वाणी का उदय होता है, जो षडैश्वर्य-ज्ञानवती भगवती है । उसके स्थान प्रसिद्ध हैं, जहाँ 'पश्यन्ती' के बाद 'मध्यमा' और 'वैखरी' स्वेच्छा से विहार करती हैं ।।३

'वैखरी' की महिमा को स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं—

उस पूर्वोक्त परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी के लक्षणों से युक्त वाणी का चौथा रूप 'वैखरो' तीनों भुवनों में अकारादि से क्षकार तक के वर्णों के उच्चारण-रूप अपनी लीला द्वारा व्याप्त है। वह 'वैखरी' वेदादि विद्याओं से पूर्ण है। वह-चौथी 'वैखरी' वाणो प्रसन्न होकर मुझे अमृत-लहरी जैसे मधुर शब्दों को सुनानेवाली काव्य-रचना के साम्राज्य की सिद्धि प्रदान करे ।।४

अव वाग्भव (ऐं) की महिमा वताते हुए कहते हैं—

हे मातः ! निश्चय ही सृष्टि के आदि में ब्रह्मा भी तुम्हारा ध्यान कर चारों वेदों और चौदह विद्याओं को प्रकट करने में सफल हुए थे। अतः, उसो प्रकार हे ललिते! तुम मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे सरल सारस्वत विद्या अर्थात् मात्र 'वाग्भव' (ऐं) को मुझे प्रदान करो, जिसके जपानन्द के फल-स्वरूप उत्पन्न होनेवाले रोमाञ्च आत्मा आदि देवताओं को उद्वोधित करते हैं ।।५

अब भगवतो के दूसरे बीज के ध्यान का फल बताते हैं—

हे मातः ! तुम शरीर-धारी जीवों में 'धृति' अर्थात् एकार-रूप से, 'नाद' अर्थात् उकार-रूप से, 'एक-रेखा' अर्थात् चन्द्र-कला-रूप से, 'प्राण' अर्थात् 'हकार' रूप से, 'हुताशन' अर्थात् रेफ-रूप से, 'विन्दु' अर्थात् अनुस्वार, उसकी प्रतिष्ठा अर्थात् आरोपण होने से 'ह्रीं' रूप से विद्यमान रहती हो। अतः महादेव की पत्नी तुम भुवनेश्वरी को विजयिनी-रूप में मैं ध्यान करता हूँ। तुम्हारी दया से पवित्र बुद्धि का विकास होकर मेरी वाणो गद्य-पद्य रूपी सुन्दर उक्तियों से क्रीडा करने में समर्थ वने ।।६

अब यन्त्रोद्धार का वर्णन करते हैं—

हे जननि ! मैं दिन-प्रतिदिन पीपल के पत्तों के समान त्रिकोणाकार से सुशोभिता और षट्-कोण से परिवेष्टित आवासवाली तुम वाग्-देवता भुवनेश्वरी की ही आराधना करता हूँ, जिससे शरद्-काल की ज्योत्स्ना को देखकर उद्वेलित होनेवाली अमृत-सागर में स्वेच्छा से शब्दायमान लहरी की क्रीडा को जीतनेवाली मेरी दिव्य वाणी प्रकाशित हो।

(इस प्रकार पहले त्रिकोण लिखे, तब षट्-कोण बनाकर, दिन के आठ प्रहर होते हैं—इस प्रमाण से अष्ट-दल-कमल की रचना करने का सङ्केत मिलता है। तदनन्तर मध्य में चन्द्र-कला और अनुस्वार से युक्त वाङ्-मय वीज 'ऐं' लिखे। यही यन्त्रोद्धार की विधि है।) ।।७

अब परमेश्वरी का ध्यान बताते हैं—

हे मातः ! लेख द्वारा प्रस्तुत ज्ञेय वस्तु की सूचक मनोरम कान्ति से युक्त पुस्तक द्वारा शोभित तुम्हारा बाँयाँ हाथ मेरे लिए कल्याण-कारी हो। तुम्हारा दूसरा दाँयाँ हाथ ज्ञान-मयी मुद्रा को धारण किए हुए, जो मूँगे की लता के सरल विलास जैसी मनोहर अँगुलियों से युक्त है, तत्काल ही मेरी भ्रान्ति का निराकरण करनेवाला हो ।।८

इसके बाद भगवती की कृपा-दृष्टि के लिए प्रार्थना करते हैं—

हे मातः ! पापों के जाल-समूह को नष्ट करने की लीला में कठोर-रूपा और करुणामृत से कोमल - रूपा तुम्हारी दृष्टि मेरी वाणी के अभीष्ट गद्य-पद्यादि के स्फुरणों के अर्थ-वैचित्र्य को ब्रह्म के समान मन को पवित्र करनेवाले उद्गारों से युक्त करे ।।९

अब भगवती के अर्चन-विधान को बताते हैं--

हे जननि ! मैं तुम्हें वाग्बीज (ऐं)के मध्य में पूजता हूँ । तुम चतुर्दल आधार-चक्र में विराजमान उठी हुई माया (ह्रीं) लता-रूपा हो और वह लता प्रत्यावृत्ति-पूर्वक अकारादि वर्णों से पुष्पिता है अथवा अकारादि से 'क्ष' तक प्रत्यावृत्ति अर्थात् लोम-विलोम-पूर्वक वर्णों द्वारा शोभाय-माना है (यथा—'ह्रीं अं, ह्रीं आं' इत्यादि और प्रति-लोम, यथा--'ह्रीं क्षं, ह्रीं ळं, ह्रीं सं' इत्यादि) । ब्रह्म-रन्ध्र में स्थित निर्मल सहस्र-दल-कमल में चञ्चलता-पूर्वक क्रीडा करती हुई अमृत-लहरी से हिलते हुए गोलाकार कमल-दलों के अवर्णनीय दृश्य से वह ह्रींकार-लता अवर्णनीया है ।।१०

अब परमेश्वरी की आराधना का फल बताते हैं--

हे मातः ! मैं तुम्हारा सेवक प्राणादि पाँच वायुओं के संक्रमण से अपने मन को हटाकर तुम्हारी दया-दृष्टि की शरण में रहता हूँ । (जहाँ-जहाँ वायु जाती है, वहीं-वहीं मन भी घूमता है, ऐसा कहा गया है । अथवा गाणपत्य, वैष्णव, सौर, शाक्त, शैव–इन पाँच साम्प्रदायिक मार्गों से मन हटाने का आशय है) । सभी देवों में श्रेष्ठ श्री महेश्वर की अलङ्कार-स्वरूपा चन्द्र-कला से निकलते हुए अमृत से निर्मल स्फटिक-पर्वत से निकले जल जैसी शोभावाली सरस्वती मेरी वाणी का आश्रय ग्रहण करे ।।११

अब भगवती के बीज के जप की दूसरी विधि बताते हैं—

हे मातः ! मैं तुम्हारी माया-मयी ज्योति की आराधना करता हूँ । इस ज्योति में अनाहत ध्वनि, जो स्वेच्छा से उत्पन्न होती है, अन्तर्निहित है । चन्द्र और सूर्य अर्थात् श्वास और उच्छ्वास का निद्रा-रहित व्यापार पर्वत के समान गहन है, उसी के मार्ग में अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र में वह ज्योति आश्रित है । साथ ही वह ज्योति मातृका अर्थात् वर्ण-माला से गुम्फित है (यथा—'ऐं ह्रीं अं, ऐं ह्रीं आं' इत्यादि से 'ऐं ह्रीं क्षं' तक) । इसके सिवा वह स्वाधीन अमृत-सागर के समान मनोहर अर्थात् अभीष्ट फल-दायिका है तथा विलोम ढंग से 'रचना' अर्थात् मातृका-वर्णों के उच्चारण से 'अकार' तक व्याप्त है (यथा—'ऐ ह्रीं क्षं, ऐ ह्रीं ळं, ऐ ह्रीं हं' से लेकर 'ऐ ह्रीं अं' तक) ।।१२

अब परमेश्वरी के बीज की आराधना का फल बताते हैं—

हे मातः ! अपने इस तेज की आराधना के फल-स्वरूप मुझे इस लोक में सारस्वत ज्ञान प्रदान करो । वह ज्ञान सब ओर फैलनेवाला हो, जिससे देव-सुन्दरियों की वीणा से निकलनेवाली सङ्गीत का चमत्कार भी नीरस जान पड़े । वे सुन्दरियाँ नन्दन वन के मनोहर चन्दन-वृक्षों की छाया में पुष्पों के आसव को स्वेच्छा से पीकर आनन्दित होती हुई वीणा बजाती हैं ।।१३

अब शरीर में भगवती के तीन बीजों के स्थान बताते हैं—

हे मातः ! तुम्हारे तीन बीजों को जपते हुए मेरे शरीर के अङ्ग उच्छ्वसित होकर पुलकित हो उठें । तीन बीजों का क्रमशः आधार-चक्र में, हृदय में और शिखा-परिसर अर्थात् ब्रह्म-रन्ध्र में सन्धान कर मैं उक्त जप करता हूँ । जप के फल-स्वरूप अपने असीम अद्वैतामृत के आस्वादन से ज्ञान-रूपी जल के पान द्वारा मैं पुलकित होता रहता हूँ । साथ ही मेधा-स्वरूप और अनवरत दया-रूपी अमृत की लहरियों-वाली भगवती का ध्यान करता रहता हूँ ।। १४

अब तीन बीजों के ध्यान करने का फल कहते हैं--

हे मातः ! मैं इस श्रेष्ठ वाणी-बीज (ऐं) को आधार-चक्र में जपता हूँ । तब काम-राज नामक (क्लीं) बीज को हृदय में जपता हूँ । उसके बाद जिसमें 'स' ही अन्तर्भूत उत्कृष्ट है और जिसके बाद विसर्ग-सहित 'औ' कार लगा है अर्थात् 'सौः'--इस शक्ति-बीज को मैं ब्रह्म-रन्ध्र में जपता हूँ । सान्त = ह,

परो=हकार के बाद सकार—यह अर्थ लेने से शक्ति-बीज का अन्य रूप 'ह्सौः' प्रस्तुत होता है)। इस जप से मेरी वह अद्भुत वाणी, जिसके रस का आस्वादन सुधी जन अपने सिर पर शोभित मणियों द्वारा आरती करते हुए करते हैं, निरन्तर विकसित होती रहे ।।१५

अब भगवती की दाँईं भुजा का ध्यान और उसका फल बताते हैं—

हे अम्ब ! तुम अपनी दाँईं भुजा से मेरे लिए बहुमुखी कल्याण का वितरण करो। तुम सुन्दर स्फटिक-मणि-युक्त सूत्र-वलय धारण किए हो, जो मस्तक पर स्थित चन्द्र-कला से निरन्तर गिरते हुए अमृत के विन्दुओं की शोभा से तादृश ही अत्यन्त उज्ज्वल है। साथ ही तुम प्रत्यक्ष वृत्तिवाले अपने ही मन्त्र-अक्षर का जप करती रहती हो ।।१६

अब भगवती की बाँईं भुजा के ध्यान का वर्णन करते हैं—

मैं प्रतिदिन निरन्तर विकासमान कमल पर अधिकाधिक शोभा पानेवाली उन परमेश्वरी वाणी की आराधना करता हूँ, जो अपने बाएँ जानु पर रखे हुए हाथ में पुस्तक धारण करने में बड़ी रुचि रखती हैं। वे भगवती स्फटिक के छिद्रों से निकलती हुई छवि की शोभा के समान उज्ज्वल और भवन-शील स्वस्तिक नामक आसन बाँधे हुए हैं ।।१७

अब भगवती के ध्यान का विशेष फल बताते हैं—

हे मातः ! इस प्रकार के तुम्हारे ध्यान से मेरी वाणी, जो संसार के मार्गों में व्याप्त होती हुई प्रौढ़ता-पूर्वक क्रीडा करती हुई असीम सारस्वत-प्रवाह की विविध शैलियों से मार्जित है, सब प्रकार से विशेष शोभा को प्राप्त हो। मेरी उस वाणी को सुनकर चकित होनेवाले विद्वान् लोग अपने नेत्रों को बन्दकर और अपने-अपने शिर को हिलाते हुए चन्द्रमा की कला को भी तुच्छ समझें ।।१८

अब परमेश्वरी के तीनों बीजों के जप की अन्य विधि बताते हैं—

हे महेश्वरि ! संसार के बन्धनों से मुक्त होकर अर्थात् निश्चिन्त होकर मैं वाणी के भीतर सौ मात्रा का जप इस प्रकार करता हूँ कि तीनों बीजों का विलोम-विषम हो जाय और मातृका-वर्णों के साथ चिन्तन होता रहे। 'आदौ' अर्थात् अकार के आदि में 'इन्दु' अर्थात् चन्द्र-कला, फिर 'बिन्दु' अर्थात् अनुस्वार—इन दोनों से 'मधुर' अर्थात् मनोहर बना वाग्भव बीज अर्थात् 'ऐं', फिर 'झान्ते' अर्थात् 'झ' वर्ण के बाद 'कामात्मक' अर्थात् काम-बीज 'क्लीं', उसके बाद 'क' और 'ष' के 'योग' अर्थात् 'क्ष'-कार के बाद 'तृतीयं' अर्थात् तीसरे शक्ति-बीज 'सौः' का जप करता हूँ।

(लोम-क्रम—'ऐं' अं ··· अः, कं ··· ङं, चं छं जं झं 'क्लीं' ञं, टं ··· णं, तं ··· नं, पं ··· मं, यं ··· सं हं ळं क्षं 'सौः'। विलोम-क्रम—'सौः' क्षं ळं हं सं ··· यं, मं ··· पं, नं ··· तं, णं ··· टं, ञं 'क्लीं' झं जं छं चं, ङं ··· कं, अः ··· अं 'ऐं') ।।१९

अब भगवती की आराधना का फल बताते हैं—

हे मातः ! भगवती की आराधना के फल-स्वरूप तत्काल ही मेरी विश्व-व्यापी विद्वत्ता की उपाधि प्रकाशमान हो उठे। सैकड़ों आज्ञा-सिद्ध महा-कवियों द्वारा प्रौढ़ी-कृता मेरी वाणी को सुननेवाले लोगों को चैत्र अर्थात् वसन्त-काल में क्रीड़ा करनेवाली कोयलों की कुहू-कुहू से उत्पन्न पञ्चम राग का समाहार भी भार-स्वरूप लगता है ।।२०

अब भगवती के अन्य मन्त्र-गर्भित ध्यान को कहते हैं—

मैं वाग्बीज 'ऐं', भुवनेश्वरी 'ह्रीं', 'वद-वद वाग्-वादिनि ! स्वाहा'—यह कहकर मन्त्राक्षरों द्वारा पाप-समूह को नष्ट करनेवाली नित्या वागीश्वरी का ध्यान करता हूँ। वे वागीश्वरी रक्त कान्तिवाले

अपने चारों कर-कमलों द्वारा वीणा, पुस्तक, अक्ष-सूत्र-वलय और खिला हुआ कमल धारण किए हैं। (निचले दाँएँ हाथ से वीणा, निचले बाँएँ हाथ से पुस्तक, ऊपरी दाएँ हाथ से अक्ष-माला और ऊपरी बाँएँ हाथ से कमल लिए हैं) ।।२१

अब भगवती के जप और ध्यान का फल कहते हैं--

हे मातः ! आपके मन्त्र-जप और ध्यान के फल-स्वरूप आपकी कृपा से मुझे सभी विद्याओं पर ऐसा अधिकार प्राप्त हो, जो चन्द्रिका की मनोरमता को चुरानेवाली कीर्ति जैसी कविता द्वारा सेवित अनूठे सिंहासन से युक्त हो और जो ईश्वर के आराधन और ज्ञान आदि से प्राप्त होनेवाले तत्त्व-ज्ञान से उत्पन्न ज्ञानोदक के फल-स्वरूप मिलनेवाले परमानन्द से प्रतिष्ठित हो ।।२२

अब भगवती के बीज के स्थानान्तर का फल दो श्लोकों में स्पष्ट करते हैं--

हे मातः ! जो वाग्-बीज 'ऐं' को चन्द्रमा की प्रभा के समान ध्यानकर उसके ऊपर तारा के आकार में स्थित मनोहर बिन्दु (अनुस्वार) के दोनों ओर माया-बीज 'ह्रीं' को लोम-प्रतिलोम-क्रम से त्रिधा (तीन प्रकार से) वेष्टित कर इस समस्त मन्त्र को पूर्ण-चन्द्र के मध्य में अमृत के समान उज्ज्वल वर्ण का और अमृत-प्रवाह से व्याप्त देखता हुआ स्थिर-भाव से अपने जिह्वाग्र में ध्यान करता है, उसके मन की दीर्घ-कालीन जड़ता आपके दया-पूर्ण कटाक्ष के पड़ने मात्र से शान्त हो जाती है।

मन की उक्त जड़ता इस प्रकार की है कि जागृत अवस्था में भी जो विकार अर्थात् विकृतियाँ होती हैं, उनसे भी अधिक प्रबल वह होती है। उस जड़ता के दूर होने से शीघ्र ही मुख-कमल पर वाणी के विलासों से उत्पन्न श्रेष्ठ तेज छा जाता है, जो तीनों लोकों के अद्भुत रस के अद्वैत-ज्ञान की अनुभूति का देनेवाला है ।।२३-२४

अब भगवती के मातृका-मय शरीर के अवयवों को दो श्लोकों में बताते हैं—

हे अम्बिके ! आद्य अर्थात् 'अ' कार तुम्हारा शिर है और दूसरा अर्थात् 'आ' कार मुख है। फिर 'इ' और 'ई' तुम्हारे दो नेत्र हैं; 'उ' और 'ऊ' दो कान; 'ऋ' और 'ॠ' दो नाक के छिद्र हैं। उनके बाद के 'ऌ' और 'ॡ' दो कपोल (गाल) हैं। ऊपर और नीचे के दाँत तथा दोनों ऊपर-नीचे के ओंठ क्रमशः सन्ध्यक्षर अर्थात् 'ए, ऐ' क्रमशः ऊपरी व नीची दन्त-पंक्तियाँ हैं तथा 'ओ, औ' क्रमशः ऊपरी व निचले ओंठ। आगे का बिन्दु अर्थात् 'अं' जिह्वा-मूल है और दूसरा विसर्गी स्वर अर्थात् 'अः' तुम्हारी ग्रीवा (गरदन) है ।।२५

कादि अर्थात् 'क ख ग घ ङ' तुम्हारी दाहनी भुजा है। उसके बाद का वर्ग अर्थात् च-वर्ग (च छ ज झ ञ) तुम्हारी बाँईं भुजा है। टादि अर्थात् ट-वर्ग और तादि अर्थात् त-वर्ग क्रमशः तुम्हारे दोनों दाएँ व बाँएँ पैर हैं। अर्थात् 'ट ठ ड ढ ण' तुम्हारा दाहना पैर है और 'त थ द ध न' बाँयाँ पैर। हे मातः ! तुम्हारी दोनों कोख (कुक्षि) 'प' और 'फ' से बनी हैं अर्थात् 'प' दाईं कोख और 'फ' बाँईं कोख है। बादि-त्रय अर्थात् 'ब भ म' क्रमशः तुम्हारे पृष्ठ (पीठ), नाभि और हृदय हैं। यादि अर्थात् 'य र ल व श ष स' क्रमशः तुम्हारी सात धातुयें (१ त्वक् या खाल, २ असृङ् या रक्त, ३ मांस, ४ मेद या चर्बी, ५ अस्थि, ६ मज्जा और ७ शुक्र या वीर्य) हैं। 'स-पर' अर्थात् 'ह' समीरण या तालु है और हे अम्बिके ! 'क्ष' तुम्हारा क्रोध या ब्रह्म-रन्ध्र है ।।२६

अब भगवती के मातृका-मय शरीर की आराधना का फल बताते हैं––

हे शिवे ! इस प्रकार के तुम्हारे तीनों लोकों में व्याप्त वर्ण-मय शरीर का जो आश्रय लेता है। अर्थात् अपने शरीर के अङ्गों में अक्षरों को स्थापित कर अहं-भावना अर्थात् मैं स्वयं ही वर्ण-मय हूँ ऐसा ध्यान करता है, चौदहों विद्यायें मूर्ति-रूप होकर अपने हाथों से उसकी सेवा करती हैं। वे विद्यायें उसकी दृष्टि की कृपा चाहती हैं और उनके हाथ सायंकाल के मुकुलित कमलों के आकार में मुड़े रहते हैं ।।२७

अब भगवती के उक्त प्रकार के ध्यान का दूसरा फल बताते हैं––

हे जननि ! जो तुम्हारे वर्ण-मय शरीर को जानते हैं या उसका जप करते हैं या निरन्तर उसका ध्यान करते हैं या उसकी महिमा गाते हैं, उनके मुख को वाणी के विलास कोमल पद्य रचनाओं से सुशोभित करते हैं। यही नहीं, कार्तिक की रात्रि में तारा-समूहों की जैसी शोभावाला और अमृत के समान आनन्द देनेवाला उनका यश पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सर्वत्र व्याप्त हो जाता है ।।२८

अब वर्ण-मय शरीर के ध्यानान्तर का फल बताते हैं—

हे मातः ! फिर इस तुम्हारे वर्ण-मय शरीर को माया-बीज 'ह्रीं' से गुम्फित कर और श्रीकूर्म-चक्र से प्रतिष्ठित कर दीपाम्नाय के जाननेवाले जो साधक निरन्तर जपते हैं, निश्चय ही उनके चरणों की सेवा सदा ऐसे राजा लोग करते हैं, जिनके मुकुटों की पंक्तियाँ कुछ ऊँची होकर अपने अंकुशाकार रत्नों की चमक से पृथ्वी पर की मिट्टी को प्रकाशमान करती हैं और वह मिट्टी सेवा करते हुए राजाओं के अङ्गराग की शोभा से मिल जाती है। (दीपाम्नाय में आठ कोष्ठ लिखकर प्रत्येक कोष्ठ में अकारादि सभी स्वर दो-दो कर जोड़ों में लिखे जाते हैं। फिर कादि सभी वर्णों के समूह अङ्कित होते हैं। जिस कोष्ठ में स्थानाधिपति देवता के नाम का पहला अक्षर मिलता है, उसी के अनुसार स्थान चुन कर माया-बीज से गुम्फित मातृ का-मय शरीर का जप किया जाता है। ऐसा जप करनेवाले 'दीपाम्नाय' जाननेवाले कहे जाते हैं।) ।। २९

अब पुनः भगवती के वर्ण-मय शरीर के दूसरे ध्यान का फल बताते हैं––

हे मातः ! अकारादि सभी अक्षरों और वर्णों के पहले श्री-बीज 'श्रीं' और क्रोधाक्षर 'क्ष' के वाद पुनः श्री-बीज 'श्रीं' लगाकर तुम्हारे मातृका-मय शरीर ('श्रीं अं श्रीं ,श्रीं आं श्रीं ' इत्यादि से लेकर 'श्रीं सं श्रीं हं श्रीं ळं श्रीं क्षं श्रीं' तक) का जो भजन (जप) करता है, उसके सम्मुख लक्ष्मी सदा जाग्रत् रूप में रहती हैं, अन्यत्र नहीं जातीं। पराग की सुगन्ध के लोभ से व्याकुल भौरों की पंक्ति-रूपी मनोहर शृङ्खला से मानों लक्ष्मी बँधी-सी रहती हैं ।।३०

अब भगवती के अन्य ध्यानों का फल पुनः तीन श्लोकों में कहते हैं––

हे मातः ! जो अपने समीप मनोहर त्रिकोण के अन्तर्गत मूंगे के अंकुर के द्रव्य जैसी रक्त-वर्णा रेखा के समान 'ह्रीं'कार-रूपा तुम्हारा ध्यान करता है, उसके लिए ऐसी सुन्दर स्त्रियाँ मोह में पड़ जाती हैं, जिन्हें चन्दन, चन्द्रमा, केले, इक्षु और कमल की मालाएँ भी तुच्छ प्रतीत होती हैं। ये स्त्रियाँ उस साधक के लिए जो लम्बी साँसें छोड़ती हैं, उनकी गर्मी से वे स्वयं व्याकुल हो उठती हैं ।।३१

हे मातः ! भग-मालिनी नाम से दिव्यागम में शेखरी-कृता तुम आनन्द-स्वरूपा को जो स्मरण करता है (ऐं ह्रीं आनन्द-मयि भग-मालिनि स्वाहा), सुन्दर भौंहोंवाली स्त्रियाँ पुलकित शरीर से और प्रिय वचनों द्वारा तथा अधीखुली आँखों से उसे देखती हुई उसका ध्यान किया करती हैं ।।३२

हे मातः ! शोण-सागर में तैरती हुई सिन्दूर-नौका में स्वेच्छा से विकसित पद्मराग के समान कमलिनी के पुष्प के आसन पर विराजमाना तुम्हारा जो ध्यान करता है, उसका चिन्तन वे सुन्दर स्त्रियाँ करती हैं, जो बाल-सूर्य की आभा से होड़ लेनेवाले रत्नों से बने आभूषणों से सुसज्जिता हैं और उन चमक से उनके अङ्गराग और वस्त्रों की भी शोभा बढ़ी हुई है ।।३३

हे मातः ! तुम्हारा ध्यान करनेवाले साधक पर आसक्त वे सुन्दर स्त्रियाँ न केवल कपूर की निन्दा करती हैं, अपितु कुमुद और कमलिनी तथा कला-कुशलता की भी उपेक्षा कर देती हैं । यही नहीं, अव्यक्त शब्द करनेवाली मधुर कण्ठवाली सुन्दर स्त्रियों के कुहू-कुहू का मनोरम कोलाहल भी उन्हें अच्छा नहीं लगता । प्रलय-समय की अग्नि के समान कामदेव के महा-अपस्मार जैसे वेग से व्याकुल होकर वे काँपती हैं, हाय-हाय कर गिरती हैं और कुछ भी बोल नहीं पातीं—बस, विरह-वश दुःख ही मनाती रहती हैं ।।३४

अब भगवती के मृत्युञ्जय-मन्त्र की आराधना को बताते हैं—

हे मृत्युञ्जय नामवाले भगवच्चैतन्य-रूप चन्द्र की चन्द्रिके ! हे ह्रींकारि ! हे हंस-सञ्जीविनि ! मैं अपने ज्ञान की प्राप्ति के हर्ष के द्वारा देवों की ईश्वरी तुम्हारी सेवा करता हूँ, अतः तुम मेरे पहले के अज्ञान आदि का नाश करो और प्राण-वायु के द्वारा उत्फुल्लित हृदय-ग्रन्थि पर मेरे जीव को स्थापित करो । (मृत्युञ्जय मन्त्र—ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जये, भगवति, चैतन्य-चन्द्रे, हंस-सञ्जीवनि ! स्वाहा ।) ।।३५

अब मृत्युञ्जय-मन्त्र का ध्यान दो श्लोकों में बताते हैं—

हे मातः ! जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के मध्य में निरन्तर प्रकाशमान शरीरवाली तुम मोक्ष-दायिनी का इस प्रकार प्रत्यक्ष निरन्तर अर्चन करते हैं, वे काल द्वारा ग्रासी-कृत तीनों लोकों के सिर पर पैर रख-कर ऐश्वर्य-सागर में अनन्त काल तक सुख-भोग करते हैं ।।३६

वह चिद्-रूपा भुवनेश्वरी 'ह्रीं' मेरे चित्त में उसी प्रकार क्रीडा करे, जिस प्रकार हंसी मान-सरोवर में विहार करती है । उस भुवनेश्वरी की कलङ्क-रहिता कोई कला अर्थात् तुरीयावस्था, जो अज्ञान-रूपी प्रगाढ़ अन्धकार का निराकरण करने में प्रवीण है और जो परा वाणी का विस्तार करती है, षट्-चक्रों का भेदन कर जाग्रत्-रूपी ज्ञान-सुधा की किरणों के द्वारा सभी दिशाओं को व्याप्त कर तुरन्त ही प्रकट हो जाती है ।।३७

अब, परमेश्वरी के अनन्य स्वरूप का वर्णन करते हैं—

हे मातः ! हे कृपा-कोमले ! हे विश्वेश्वरि! तुम अच्छी तरह प्रसन्न हो जाओ क्योंकि तुमसे बढ़-कर अन्य कोई मेरा आश्रय नहीं है । तुम्हीं मेरी माता-पिता हो, तुम्हीं सुहृद् हो, तुम्हीं भाई और मित्र हो, तुम्हीं चौदहों विद्यायें हो और तुम्हीं अतिशय यश का विस्तार करनेवाली हो । विलक्षण भाग्य भी तुम्हीं हो और अधिक क्या, समस्त वांच्छित वस्तुएँ भी तुम्हीं हो ।।३८

अब कवि अपने परम सिद्धि देनेवाले गुरुदेव का परिचय देते हैं—

दया से युक्त इस वरुणालय अर्थात् नर्मदा नदी के किनारे स्थित स्थान में कलियुग में कोई श्री सिद्धिनाथ, जो सभी आगमों में पारङ्गत थे, प्रकट हुए, उन्हीं के नाम से श्री शम्भु ने मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा की ।।३९

अब भगवती से दो श्लोकों में प्रार्थना करते हैं—

हे भुवनेश्वरि ! हे वेद-गर्भे ! गुरुदेव-रूपी श्री शम्भु की अनुमति से प्राप्त गुरु-क्रम की सिद्ध-विद्याओं के द्वारा मेरे मुख में वाणी स्तवनों के रूप में निवास करे। उन स्तवनों से तुम शीघ्र ही प्रसन्न हो जाओ ।।४०

हे अम्बिके ! मैं निरन्तर तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि जिन लोगों की तुम श्रेष्ठ कुल-देवता नहीं हो, उनकी वाणी मेरी वाणी से मिश्रित न हो और उन लोगों से परिचित होने पर भी क्षण भर के लिए भी उनके साथ मेरा रहना न हो ।।४१

अब गुरुदेव की अभ्यर्थना करते हुए कहते हैं—

हे श्रीशम्भु-नाथ ! हे करुणाकर सिद्धि-नाथ ! हे श्रीसिद्धि-नाथ ! हे दया-मय ! हे शम्भुनाथ ! विविध प्रकार के अपराधों द्वारा दूषित मुझ पर अपना मन दयापूर्वक प्रसन्न रखो क्योंकि मेरा अन्य कोई आश्रय नहीं है ।।४२

अब परमेश्वरी की दया का वर्णन करते हैं—

इस प्रकार क्षण-क्षण आँखों से अश्रु गिराते हुए पृथ्वीधर (स्तुति-कर्त्ता कवि) के समक्ष भगवती भुवनेश्वरी प्रकट हुई और वर देकर हृदय में प्रवेश कर गई तथा स्वयं ही नए-नए गद्य-पद्य-मय शास्त्रों के रूप में अवतीर्ण हुईं ।।४३

अब प्रस्तुत स्तोत्र की प्रतिष्ठा-प्राप्ति की बात बताते हैं—

श्री शम्भु-नाथ ने मेरे इस स्तोत्र को अनुपम वाक्-सिद्धि को देखकर यह इस संसार में चिर काल तक रहे, इस उद्देश्य से पढ़ने मात्र से सभी सिद्धि देने की महती प्रतिष्ठा इसे प्रदान की। तीनों लोकों में जो आगम-शास्त्र हैं, उनके द्वारा स्तुत्य विद्या-सिंहासन के सुन्दर स्थान पर इस स्तोत्र को उन्होंने प्रतिष्ठित किया ।।४४

अब मन्त्र-जप के समय की विधि दो श्लोकों में बताते हैं—

पृथ्वी पर सोना, बोलने में संयम रखना, स्त्री-सङ्ग से दूर रहना, प्रातःकाल जाती-वृक्ष की डाली से दाँतों और जिह्वा को स्वच्छ करना, पत्तल पर मधुर भोजन करना और ब्रह्म-वृक्ष (पलाश) के फूलों से पूजन तथा हवन करना, उज्ज्वल पुष्प, वस्त्र, अङ्गराग आदि का प्रयोग करना—।।४५

इस प्रकार नियम-पूर्वक जो तीन महीने तक निरन्तर प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल एकाग्र होकर जप-पाठ- ध्यानादि करता है, उसके मुख से श्रीशम्भुनाथ की कृपा के फल-स्वरूप तत्काल ही सभी विद्यायें सद्यः स्फुरण होनेवाले और तीनों लोकों को आश्चर्य में डालनेवाले गद्य-पद्यादि-रूपी उल्लासों में प्रकट होती हैं ।।४६

अन्त में इस स्तोत्र की महिमा दो श्लोकों में स्पष्ट करते हैं—

जो बिना नियम के ही, मन्त्र-दीक्षा पाये बिना, केवल श्रद्धा से निर्मल होकर इस स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है, उसे भी एक वर्ष में ही निर्दोष कवित्व से युक्त मन हरनेवाली विद्यायें प्राप्त होती हैं ।। ४७

इस स्तोत्र का अकल्पनीय प्रभाव हर्ष-दायक है क्योंकि श्रीशम्भु की आज्ञा से अणिमा आदि सभी सिद्धियाँ इस स्तोत्र में निहित हैं ।।४८

श्रीभुवनेश्वरी - स्तवाष्टकम्

श्रीदेव्युवाच—

प्रभो ! श्रीभैरव - श्रेष्ठ ! दयालो भक्त - वत्सल !
भुवनेशी - स्तवं ब्रूहि यद्यहं तव वल्लभा ।। १

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि भुवनेश्यष्टकं शुभम् ।
येन विज्ञान - मात्रेण त्रैलोक्यं वशगं भवेत् ।। २
ॐ नमामि जगदाधारां भुवनेशीं भव - प्रियां ।
भुक्ति - मुक्ति - प्रदां रम्यां रमणीयां शुभावहाम् ।। ३
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देवि ! त्वं यज्ञा यज्ञ-नायिका ।
त्वं नाथा त्वं तमो-हर्त्री व्याप्य - व्यापक-वर्जिता ।। ४
त्वमाधारस्त्वमिज्या ज्ञान-ज्ञेयं परं पदम् ।
त्वं शिवस्त्वं स्वयं विष्णुस्त्वमात्मा परमोऽव्ययः ।। ५
त्वं कारणं च कार्यं च लक्ष्मीस्त्वं च हुताशनः ।
त्वं सोमस्त्वं रविः कालस्त्वं धाता त्वं च मारुतः ।। ६
गायत्री त्वं च सावित्री त्वं माया त्वं हरि-प्रिया ।
त्वमेवैका परा-शक्तिस्त्वमेव गुरु - रूप - धृक् ।। ७
त्वं काला त्वं कलाऽतीता त्वमेव जगतां श्रियः ।
त्वं सर्व-कार्यं सर्वस्य कारणं करुणा-मयि ! ।। ८

फल-श्रुति

इदमष्टकमाद्याया भुवनेश्या वरानने ! त्रि-सन्ध्यं श्रद्धया मर्त्यो यः पठेत् प्रीत-मानसः ।।१
सिद्धयो वशगास्तस्य सम्पदो वशगा गृहे । राजानो वशमायान्ति स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः ।।२
भूत-प्रेत-पिशाचाद्या नेक्षन्ते तां दिशं ग्रहाः । यं यं कामं प्रवाञ्छेत साधकः प्रीत-मानसः ।।३
तं तमाप्नोति कृपया भुवनेश्या वरानने ! अनेन सदृशं स्तोत्रं न समं भुवन-त्रये ।।४
सर्व - सम्पत् - प्रदमिदं पावनानां च पावनम् । अनेन स्तोत्र वर्येण-साधितेन वरानने !
सम्पदो वशमायान्ति भुवनेश्याः प्रसादतः ।। ५

।। श्री रुद्रयामले तन्त्रे श्रीभुवनेश्वरी-स्तवाष्टकं सम्पूर्णम् ।।

श्रीभुवनेश्वरी-शुद्ध-शक्ति-खडग-माला

विनियोग—ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-खड्ग-माला-मन्त्रस्य श्रीप्रकाशात्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीभुवनेश्वरी देवता, हं बीजं, ईं शक्तिः, रं कीलकं, श्रीभुवनेश्वरी-पराम्बा-प्रसन्नार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीप्रकाशात्मा - ऋषये नमः शिरसि, गायत्री - छन्दसे नमः मुखे, श्रीभुवनेश्बरी-देवतायै नमः हृदि, हं बीजाय नमः गुह्ये, ईं शक्तये नमः पादयोः, रं कीलकाय नमः नाभौ, श्रीभुवनेश्वरी-पराम्बा-प्रसन्नार्थे जपे विनियोगायनमः सर्वाङ्गे ।

ध्यान—

स्मरेद् रवीन्द्वग्नि-विलोचनां तां, सत्-पुस्तकां जाप्य-वटीं दधानाम् ।
सिंहासनां मध्यम-यन्त्र - संस्थां, श्रीतत्त्व - विद्यां पराम्बां भजामि ।।
य एनां सचिन्तयेन्मन्त्री, सर्व - कामार्थ - सिद्धिदाम् ।
तस्य हस्ते सदैवास्ति, सर्व - सिद्धिर्न संशयः ।।
तादृशं खड्गमाप्नोति, येन हस्त - स्थितेन वै ।
अष्टादश - महा - द्वीपे, सम्राट् भोक्ता भविष्यति ।।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्रीभुवनेश्वरी-हृदय-देवि शिरोदेवि शिखा-देवि कवच-देवि नेत्र-देव्यस्त्र - देवि कराले विकराले उमे सरस्वति श्रीदुर्गे उषे लक्ष्मि श्रुति स्मृति धृति श्रद्धे मेधे रति कान्ति आर्ये श्रीभुवनेश्वरि दिव्यौघ-गुरु-रूपिणि सिद्धौघ-गुरु-रूपिणि मानवौघ-गुरु-रूपिणि श्रीगुरु-रूपिणि परम-गुरु-रूपिणि परापर-गुरु-रूपिणि परमेष्ठी-गुरु-रूपिणि अमृतभैरव-सहित-श्रीभुवनेश्वरि हृदय-शक्ति शिरः-शक्ति शिखा-शक्ति कवच-शक्ति नेत्र - शक्त्यस्त्र-शक्ति हृल्लेखे गगने रक्ते करालिके महोच्छुष्मे सर्वानन्द-मय-चक्र-स्वामिनि !

गायत्री-सहित-ब्रह्म-मयि सावित्री-सहित-विष्णु-मयि सरस्वती-सहित-रुद्र-मयि लक्ष्मी-सहित-कुबेर-मयि रति-सहित-काम-मयि पुष्टि-सहित-विघ्न-राज - मयि शङ्ख-निधि-सहित-वसुधा-मयि पद्म-निधि-सहित-वसुमति-मयि गायत्र्यादि-सह-श्रीभुवनेश्वरि ह्रां हृदय-देवि ह्रीं शिरो-देवि ह्रूं शिखा-देवि ह्रैं कवच-देवि ह्रौं नेत्र-देवि ह्रः अस्त्र-देवि सर्व-सिद्धि-प्रद-चक्र-स्वामिनि !

अनङ्ग-कुसुमे अनङ्ग-कुसुमातुरे अनङ्ग-मदने अनङ्ग-मदनातुरे भुवन-पाले गगन-वेगे शशि-रेखे अनङ्ग-वेगे सर्व-रोग-हर-चक्र-स्वामिनि !

कराले विकराले उमे सरस्वति श्रीदुर्गे उषे लक्ष्मि श्रुति स्मृति धृति श्रद्धे मेधे रति कान्ति आर्ये सर्व-संक्षोभण-चक्र-स्वामिनि !

ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चामुण्डे महा - लक्ष्म्यं-नङ्ग - रूपेऽनङ्ग-कुसुमे मदनातुरे भुवन-वेगे भुवन-पालिके सर्व-शिशिरेऽनङ्ग-मदनेऽनङ्ग-मेखले सर्वाशा-परिपूरक-चक्र-स्वामिनि !

इन्द्र-मय्यग्नि-मयि यम-मयि निरृति-मयि वरुण-मयि वायु-मयि सोम-मयी-शान-मयि ब्रह्म-मय्यनन्त-मयि वज्र-मय्यग्नि-मयि दण्ड-मयि खड्ग-मयि पाश-मय्यंकुश-मयि गदा-मयि त्रिशूल-मयि पद्म-मयि चक्र-मयि वर-मय्यंकुश-मयि पाश-मय्यभय-मयि बटुक-मयि योगिनी-मयि क्षेत्रपाल-मयि गण-पति-मय्यष्ट-वसु-मयि द्वादशादित्य-मय्येकादश-रुद्र-मयि सर्व-भूत-मय्यमृतेश्वर-सहित-श्रीभुवनेश्वरि त्रैलोक्य-मोहन-चक्र-स्वामिनि नमस्ते नमस्ते नमस्ते स्वाहा श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ ।।

फल-श्रुति

कथयामि महा-देवि ! भुवनेशीं महेश्वरीं । अनया सदृशी विद्या नान्या ज्ञानस्य साधने ।।१
नात्र चित्त-विशुद्धिर्वा नारि-मित्रादि-दूषणम् । न वा प्रयास-बाहुल्यं समयासमयादिकम् ।।२
देवैर्देवत्व-विधये सिद्धैः खेचर-सिद्धये । पन्नगै राक्षसैर्मर्त्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ।।३
कामिभिर्धर्मिभिश्चार्थ-लिप्सुभिः सेविता परा । न तथा व्यय-बाहुल्यं काम-क्लेश-करं तथा ।।४
य एवं चिन्तयेन्मन्त्री सर्व-कामार्थ-सिद्धिदाम् । तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्व-सिद्धिर्न संशयः ।।५
गद्य-पद्य-मयी वाणी सभायां विजयी भवेत् । तस्य दर्शन-मात्रेण वादिनो निष्कृतादरः ।।६
राजानोऽपि हि दासत्वं भजन्ते किं प्रयोजनः । दिवा-रात्रौ पुरश्चर्यां कर्तुश्चैव क्षमो भवेत् ।।७
सर्वस्यैव जनस्येह वल्लभः कीर्ति-वर्धनः । अन्ते च भजते देवी-गणत्वं दुर्लभं नरः ।।८
चन्द्र-सूर्य-समो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि । न तस्य दुर्लभं किञ्चित् यो वेत्ति भुवनेश्वरीम् ।।

।। श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये श्रीशुद्ध-शक्ति-खड्ग-माला-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

श्रीभुवनेश्वरी-अष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्रम्

कैलास-शिखरे रम्ये नाना-रत्नोप-शोभिते, नर-नारी-हितार्थाय शिवं पप्रच्छ पार्वती ।

देव्युवाच—

भुवनेश्वरी महा-विद्या नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । कथयस्व महादेव ! यद्यहं तव वल्लभा ।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! महा-भागे ! स्तव-राजमिदं शुभम्, सहस्र-नाम्नामधिकं सिद्धिदं मोक्ष-हेतुकम् ।
शुचिभिः प्रातरुत्थाय पठितव्यं समाहितैः, त्रिकालं श्रद्धया युक्तैः सर्व-काम-फल-प्रदम् ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वर्य्यष्टोत्तरः शत - नाम-स्तोत्रस्य श्रीशक्तिर्ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीभुवनेश्वरी देवता । चतुर्वर्ग-साधने विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीशक्ति-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्री भुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । चतुर्वर्ग-साधने विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

अष्टोतर-शतनाम-स्तोत्रम्

महा-माया महा-विद्या महा-योगा महोत्कटा, माहेश्वरी कुमारी च ब्रह्माणी ब्रह्म-रूपिणी ।
वागीश्वरी योग-रूपा योगिनी कोटि-सेविता, जया च विजया चैव कौमारी सर्व-मङ्गला ।
हिंगुला च विलासी च ज्वालिनी ज्वाल-रूपिणी, ईश्वरी क्रूर-संहारी कुल-मार्ग-प्रदायिनी ।
वैष्णवी सुभगाकारा सुकुल्या कुल-पूजिता, वामाङ्गा वामाचारा च वाम-देव-प्रिया तथा ।
डाकिनी योगिनी-रूपा भूतेशी भूत - नायिका, पद्मावती पद्म - नेत्रा प्रबुद्धा च सरस्वती ।
भूचरी खेचरी माया मातङ्गी भुवनेश्वरी, कान्ता पति-व्रता साक्षी सुचक्षुः कुण्ड-वासिनी ।
उमा कुमारी लोकेशी सुकेशी पद्म-रागिनी, इन्द्राणी ब्रह्म-चाण्डाली चण्डिका वायु-वल्लभा ।
सर्व-धातु - मयी - मूर्तिर्जल - रूपा जलोदरी, आकाशी रणगा चैव नृ-कपाल-विभूषणा ।
शर्म्मदा मोक्षदा चैव काम-धर्मार्थ-दायिनी, गायत्री चाथ सावित्री त्रि-सन्ध्या तीर्थ-गामिनी ।
अष्टमी नवमी चैव दशम्येकादशी तथा, पौर्णमासी कुहू-रूपा तिथि-मूर्ति-स्वरूपिणी ।
सुरारि-नाश-कारी च उग्र-रूपा च वत्सला, अनला अर्द्ध - मात्रा च अरुणा पीन-लोचना ।
लज्जा सरस्वती विद्या भवानी पाप-नाशिनी, नाग-पाश - धरा मूर्तिरगाधा धृत-कुण्डला ।
क्षय-रूपी क्षय-करी तेजस्विनी शुचि-स्मिता, अव्यक्ता व्यक्त-लोका च शम्भु-रूपा मनस्विनी ।
मातङ्गी मत्त-मातङ्गी महा-देव-प्रिया सदा, दैत्यहा चैव वाराही सर्व-शास्त्र-मयी शुभा ।

फल-श्रुति

य इदं पठते भक्त्या शृणुयाद् वा समाहितः, अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो धनवान् भवेत् ।
वैश्यस्तु धन - वान् भूयात् शूद्रस्तु सुखमेधते, अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैक-चेतसः ।
ये पठन्ति सदा भक्त्या न ते वै दुःख-भागिनः ।
एक-कालं द्वि-कालं वा त्रि-कालं वा चतुर्थकं, ये पठन्ति सदा भक्त्या स्वर्ग-लोके च पूजिताः ।
रुद्रं दृष्ट्वा यथा देवा पन्नगा गरुडं यथा, शत्रवः प्रपलायन्ते तस्य वक्त्र-विलोकनात् ।

।। श्रीरुद्रयामले श्रीभुवनेश्वर्यष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

* * *

श्रीभुवनेश्वरी-सहस्रनाम-स्तोत्रम्

पूर्व-पीठिका

श्रीपार्वत्युवाच—

देव-देव ! महा-देव ! सर्व-शास्त्र-विशारद, कपाल - खट्वाङ्ग-धर ! चिता-भस्मानु-लेपन ! या आद्या प्रकृतिर्नित्या सर्व-शास्त्रेषु गोपिता, तस्याः श्रीभुवनेश्वर्या नाम्नां पुण्यं-सहस्रकम् । कथयस्व महादेव ! येन देवी प्रसीदति ।

श्रीमहेश्वर उवाच—

साधु पृष्टं महा-देवि ! साधु लोक-हिताय च, या आद्या प्रकृतिर्नित्या सर्व-शास्त्रेषु गोपिता । यस्याः स्मरण-मात्रेण सर्व-पापैः प्रमुच्यते, आराधनाद् भवेद् यस्या जीवन्मुक्तो न संशयः । तस्या नाम-सहस्राणि कथयामि श्रृणुष्व तत् ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-सहस्रनाम-स्तोत्रस्य श्रीदक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, आद्या श्रीभुवनेश्वरी देवता, ह्रीं वीजं, श्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, मम धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीदक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि । पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे । आद्या श्रीभुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । ह्रीं वीजाय नमः गुह्ये । श्रीं शक्तये नमः नाभौ । क्लीं कीलकाय नमः पादयोः । धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

सहस्रनाम-स्तोत्र

ॐ आद्या कमला वाणी माया श्रीभुवनेश्वरी, भुवना भावना भव्या भवानी भव-मोचनी ।
रुद्राणी रुद्र-भक्ता च तथा रुद्र-प्रिया सती, उमा कामेश्वरी दुर्गा सर्वाणी सर्व-मङ्गला ।
त्रिपुरा परमेशानी सुन्दरी सुन्दर - प्रिया, रमणी रमणा रामा राम-कार्य-करी शुभा ।
ब्राह्मी नारायणी चण्डा चामुण्डा चण्ड-नायिका, माहेश्वरी च कौमारी वाराही चापराजिता ।
महा-माया मुक्त-केशी महा-त्रिपुर - सुन्दरी, सुन्दरी शोभना रक्ता रक्त-वस्त्र-पिधायिनी ।
रक्ताभा रक्त-वर्णा च रक्त-वीज-निसूदिनी, रक्त-चन्दन-लिप्ताङ्गी रक्त-पुष्प-प्रिया सदा ।
कमला कामिनी कान्ता काम-देव प्रिया सदा, लक्ष्मीर्लोलाञ्चला चञ्चलाक्षी च चपल-प्रिया ।
भैरवी भय-हर्त्री च महा-भय-विनाशिनी, भयङ्करी महा - भीमा भयहा भय - नाशिनी ।
श्मशाने प्रान्तरे दुर्गे संस्मृता भय - हारिणी, जया च विजया चैव जय - पूर्णा जय-प्रदा ।
यमुना यामुना याम्या यम-श्रेष्ठा यम-प्रिया, सर्वेषां जनिका जन्या जन-वर्द्धन-कारिणी ।
काली कपालिनी कुल्ला कालिका काल-रात्रिका, महा-काल-हृदिस्था च काल-भैरव-रूपिणी ।

कपाल-खट्वांग-धरा पाशांकुश - विधारिणी, अभया च भया चैव तथा चाभय-दायिनी ।
महा-माया भीम-वेगा तथा च वर-हस्तिनी, गौरी गौराङ्गिनी गौरा गौर-वर्णा जय-प्रदा ।
उग्रा उग्र-प्रभा शान्तिः शान्तिदाऽशान्ति-नाशिनी, उग्र-तारा तथा चोग्रा नीला चैक-जटा तथा ।
हंस-रूपा महा-तारा तथा च सिद्धि-कालिका, तारा नीला च वागीशी तथा नील-सरस्वती ।
गङ्गा काशी सती सत्या सर्व-तीर्थ-मयी तथा, तीर्थ-रूपा तीर्थ-पुण्या तीर्थदा तीर्थ-सेविका ।
पुण्यापुण्य-स्वरूपा च पुण्य-दात्री सनातनी, पुण्य-काला पुण्य-संस्था तथा पुण्य-जन-प्रिया ।
तुलसी तुलना तुल्या बालिका वेधसः प्रिया, सत्या सत्यवती भीमा रुक्मिणी कृष्ण-वल्लभा ।
देवकी कृष्ण-माता च सुभद्रा भद्र-रूपिणी, मनोहरा तथा सौम्या सोमांगी सोम-दर्शना ।
घोर-रूपा घोर-तेजा घोर-वत् प्रिय-दर्शना, कुमारी बालिका क्षुद्रा कुमारी-रूप-धारिणी ।
युवती युवती - रूपा युवती-रस-रञ्जिका, पीन-स्तनी क्षीण-मध्या प्रौढ़ा मध्या जरातुरा ।
अति-वृद्धा स्थाणु-रूपा चार्वङ्गी चञ्चलानना, देव-माता देव-रूपा देव-कार्य-करी शुभा ।
देव-माता दितिर्दक्षा सर्व-माता सनातनी, पान-प्रिया पायिनी च चपला पलल-प्रिया ।
मत्स्य-मांस-प्रिया मांसाशिनी च जन-वल्लभा, तपस्विनी तपी तप्या तपः-सिद्धि-प्रदायिनी ।
हविष्याशी हविर्भोक्त्री हव्य-कव्य-विलाशिनी, स्वधा स्वाहा स्वधाधारा यज्ञाङ्गी यज्ञ-भुक् सदा।
दक्षा दाक्षायणी दुर्गा दक्ष-यज्ञ - विनाशिनी, पार्वती पर्वत-प्रीता तथा पर्वत-वासिनी ।
हैमी हर्म्या हेम-रूपा मौलि-मान्या मनोरमा, कैलास-वासिनी शुक्ला शिव-क्रोड-निवासिनी ।
चार्वङ्गी चारु-रूपा च शुभा चैव शुभानना, चलत्-कुण्डल-गण्डा श्री-लसत्-कुण्डल-धारिणी ।
हेम-सिंहोपरिस्था च हेम-भूषण-भूषणा, हेमाङ्गदा हेम-भूषा सूर्य-कोटि-सम-प्रभा ।
तरुणादित्य-सङ्काशा सिन्दूराञ्चित-विग्रहा, यवा यावक-रूपा च रक्त-चन्दन-रूप-धृक् ।
कोटरी कोटराक्षी च निर्लज्जा च दिगम्बरी, पूतना वत्स-माता च सूर्य-मण्डल - वासिनी ।
श्मशान-वासिनी शून्या दृप्त-चत्वर-वासिनी, मधु-कैटभ-संहर्त्री महिषासुर-घातिनी ।
निशुम्भ-शुम्भ-शमनी चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी, शिवानी शिव-रूपा च शिव-दूती शिव-प्रिया ।
शिवदा शिव-वक्षःस्था शिवेष्टा शिव-कारिणी, इन्द्राणी इन्द्र-कन्या च राज-कन्या सुर-प्रिया ।
लज्जा-शीला साधु-शीला कुल-स्त्री कुल-पूजिता, महा-कुलीना निष्कामा विलज्जा भूषणान्विता।
कुलीना कुल-कन्या सा तथैव कुल-भूषिता, अनन्तानन्त-पाणिकाऽनन्तासुर-विनाशिनी ।
सदाशिव-सुसंगेन वाञ्छिताऽऽनन्द - दायिनी, नागांगी नाग-भूषा च नाग-हार-विधायिनी ।
धरणी धारिणी धन्या महा-सिद्धि-प्रदायिनी, भूत-प्रेत-पिशाचा च राकिनी लाकिनी तथा ।
भूत-प्रेत-पिशाचानां वलदा यक्षिणी शिवा, धृतिः कीर्तिः स्मृतिर्मेधा पुष्टिस्तुष्टिरुमा उषा ।

शाङ्करी शाम्भवी मेना रतिः प्रीतिः सुलोचना, अनंग-मदना देवी अनंग-मदनाऽऽतुरा ।
भुवनेशी महा-माया तथा भुवन-पालिनी, ईश्वरी ईश्वर - प्रीता चन्द्र - शेखर-भूषिता ।
चित्तानन्द-करी नन्दा चित्त-संस्था जनस्य च, अरूपा बहु-रूपा च सर्व-रूपा चिदात्मिका ।
आनन्द-रूपिणी नित्या तथाऽऽनन्द-प्रदायिनी, नन्दा चानन्द-रूपा च तथाऽऽनन्द-प्रकाशिनी ।
सदानन्दा सदा-नित्या साधकानन्द-दायिनी, त्वरिता तरुणा भव्या भाविका च विभाविनी ।
चन्द्र-सूर्य-समा दीप्ता चन्द्र-सूर्यस्य पालिका, नारसिंही हय-ग्रीवा हिरण्याक्ष-विनाशिनी ।
वैष्णवी विष्णु-भक्ता च शालग्राम - निवासिनी, चतुर्भुजा चाष्ट-भुजा सहस्र-भुज-संज्ञिता ।
आद्या कात्यायनी नित्या सर्वाद्या सर्व-दायिका, सर्व-मन्त्र-मयी देवी सर्व-वेद-मयी शुभा ।
सर्व-देव-मयी देवी सर्व-लोक-मयी परा, सर्व - सम्मोहिनी देवी सर्व - लोक - वशङ्करी ।
रंजनी रंजिता रागा देह-लावण्य-रंजिता, नटी नट-प्रिया धूर्ता तथा धूर्त्त-जन-प्रिया ।
महा-माया महा-मोहा महा-सत्व-विमोहिता, बलि-प्रिया मांस-रुचिर्मधु-मांस-प्रिया सदा ।
मधु-मत्ता माधविक्रा मधु-माधव-रूपिका, दिवा-मयी रात्रि-मयी सन्ध्या सन्ध्या-स्वरूपिणी ।
काम-रूपा सूक्ष्म-रूपा सूक्ष्मिणी चाति-सूक्ष्मिणी, तिथि-रूपा वार-रूपा तथा नक्षत्र-रूपिणी ।
सर्व-भूत-मया देवी पञ्च-भूत-निवासिनी, शून्याकारा शून्य-रूपा शून्य-संस्था च स्तम्भिनी ।
ग्रहाणां स्थिति-रूपा च रुद्रादीनां च सम्भवा, आकाश-गामिनी देवी ज्योतिश्चक्र-निवासिनी ।
ऋषीणां ब्रह्म-पुत्राणां तपः-सिद्धि-प्रदायिनी, अरुन्धती च गायत्री सावित्री सत्व-रूपिणी ।
चिता-संस्था चिता-रूपा चित्त-सिद्धि-प्रदायिनी, शवस्था शव-रूपा च शव-सङ्ग-कुतूहला ।
योगिनी योग-रूपा च योगिनां मल - हारिणी, सुप्रसन्ना महा-देवी यामिनी मुक्ति-दायिनी ।
निर्मला विमला शुद्धा शुद्ध-सत्वा जय-प्रदा, महा-माया विष्णु-माया मोहिनी विश्व-मोहिनी ।
कार्य-सिद्धि-करी देवी सर्व-कार्य-निवासिनी, कार्याकार्य-करी रौद्री महा-प्रलय-कारिणी ।
स्त्री-पुं-भेदा ह्यभेद्या च भेदिनी भेद - नाशिनी, सर्व-रूपा सर्व-मयी अद्वैतानन्द-रूपिणी ।
प्रचण्डा चण्डिका चण्डा चण्डासुर-विनाशिनी, सुप्रशस्ता समस्ता च छिन्नमस्ता सुनासिका ।
अ-रूपा च विरूपा च सु-रूपा रूप-वर्जिता, चित्र-रूपा महा-रूपा विचित्रा च चिदात्मिका ।
बहु-शस्त्रा अशस्त्रा च सर्व-शास्त्र-प्रदाहिणी, शास्त्रार्था शास्त्र-वादा च नाना-शास्त्रार्थ-वादिनी ।
काव्य-शास्त्र-प्रमोदा च काव्यालङ्कार-वासिनी, रसज्ञा रसना जिह्वा रसामोदा रस-प्रिया ।
नाना-कौतुक-संयुक्ता नाना-रस-विलासिनी, अव्यक्ता व्यक्त-रूपा च विश्व-रूपा सु-रूपिणी ।
रूपावस्था तथा जीवा वेशाढ्या वेश-धारिणी, नाना-वेश-धरा देवी नाना-वेशेषु संस्थिता ।
कुरूपा कुत्सिता कृष्णा कृष्ण-रूपा च कालिका, लक्ष्मी-प्रदा महा-लक्ष्मीः सर्व-लक्षण संयुता ।

कुबेर-गृह-संस्थाना धन-रूपा धन-प्रदा, नाना-रत्न-प्रदा देवी रत्न-पुष्पेषु संस्थिता ।
वर्ण-संस्था वर्ण-रूपा सर्व-वर्ण-मयी तथा, ॐकार-रूपिणी आद्या आदित्य-ज्योति-रूपिणी ।
संसार-मोचिनी देवी संग्रामे जय-दायिनी, जय-स्वरूपा जयाख्या जयिनी जय-कारिणी ।
मानिनी मान-रूपा च मान-भङ्ग-प्रणाशिनी, मान्या मान-प्रिया मेधा मानिनी मान-दायिनी ।
साधका साधिका साध्या साधना साधन-प्रिया, स्थावरा जङ्गमा सूक्ष्मा चपला चपल-प्रिया ।
ऋद्धिदा ऋद्धि-रूपा च सिद्धिदा सिद्धि-रूपिणी, क्षेमङ्करी शङ्करी च सर्व-सम्मोह-कारिणी ।
वाञ्छिता वाञ्छनीया च सर्व-वाञ्छा-प्रदायिनी, भग-लिङ्ग-प्रमोदा च भग-लिङ्ग-निवासिनी ।
भग-रूपा भगाभोग्या लिङ्ग-रूपा च लिङ्गिनी, भग-गीतिर्महा-प्रीतिर्लिङ्ग-गीतिर्महा-सुखा ।
स्वयम्भू-कुसुमाराध्या स्वयम्भू-कुसुमाकुला, स्वयम्भू-पुष्प-रूपा च स्वयम्भू-कुसुम-प्रिया ।
शुक्र-रूपा महा-शुक्ला शुक्र-बिन्दु-निवासिनी, शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रा शुक्र-पूजक-पूजिता ।
कामाक्षा काम-रूपा च योगिनी-पीठ-वासिनी, सर्व-पीठ-मयी देवी पीठ-मध्य-निवासिनी ।
अक्ष-माला-धरा देवी पान-पात्र-विधायिनी, शूल-हस्ता चक्र-हस्ता पाशिनी पाश-रूपिणी ।
खड्गिनी गदिनी चैव तथा सर्वास्त्र-धारिणी, भाव्या भव्या भवानी सा भव-भुक्ति-प्रदायिनी ।
चतुरा चतुर-प्रीता चतुरानन-पूजिता, देव-स्तव्या देव-पूज्या सर्व-पूज्या सुरेश्वरी ।
जननी जन-पुण्या च जन-मानस-चारिणी, जटिनी केश-बद्धा च सुकेशी केश-वासिका ।
अहिंसा द्वेषिका द्वेश्या सर्व-द्वेष-विनाशिनी, उच्चाटिनी स्तम्भिनी च मोहिनी मधुरेक्षणा ।
क्रीडा क्रीडन-खेला च खेला-करण-कारिका, सर्वज्ञा सर्व-कार्या च सर्व-भक्षा सुरारिहा ।
सर्व-रूपा सर्व-शान्ता सर्वेषां प्राण-रूपिणी, सृष्टि-स्थिति-करी देवी तथा प्रलय-कारिणी ।
मुग्धा साध्वी तथा रौद्री नाना-मूर्ति-विधारिणी, सर्व-तत्वात्मिका गौरी नाना-मूर्ति-विहारिणी ।
उक्तानि यानि देवेशि ! अनुक्तानि महेश्वरि, यत् किञ्चिद् दृश्यते देवि ! तत्-सर्वं भुवनेश्वरी ।
इति श्रीभुवनेश्वर्या नामानि कथितानि ते, सहस्राणि महा-देवि ! फलमेषां निगद्यते ।

॥ फल-श्रुति ॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय अर्द्ध - रात्रौ तथा परे, प्रातःकाले तथा मध्ये सायाह्ने हर - वल्लभे !
यत्र - तत्र पठित्वा च भक्त्या एकाग्र-मानसः, यथा - काले यथा - स्थाने तस्य सिद्धिर्न संशयः ।
यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेत् तथा, तस्य सर्वं भवेत् सत्यं मनसा यच्च वाञ्छितम् ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः, कुहू - मङ्गल - संयुक्ते संक्रान्त्या शनि - भौमयोः ।
य पठेत् पाठयेद् भक्त्या देव्या नाम - सहस्रकं, तस्य सर्वं भवेद् देहे सफलं भुवनेश्वरी ।
श्मशाने प्रान्तरे वापि शून्यागारे च पार्वति ! चतुष्पथे चैक-लिङ्गे मेरु - देशे तथैव च ।
जल - मध्ये वह्नि - मध्ये संग्रामे ग्राम- शान्तये, रण - मध्ये च संग्रामे तथा प्राणस्य संशये ।

जप्त्वा मन्त्र - सहस्रं तु पठेन्नाम - सहस्रकं, तस्य तुष्टा भवेद् देवि ! सर्वदा भुवनेश्वरी ।
धूप - दीपादिभिश्चैव बलिदानादिभिस्तथा, दत्वा नाना-विधैर्देवि ! नैवेद्यैर्भुवनेश्वरीम् ।
सम्पूज्य विधिवज्जप्त्वा स्तुत्वा नाम - सहस्रकैः, अचिरात् सिद्धिमाप्नोति साधको नात्र संशयः ।
भूर्ज - पत्रे समालिख्य कुंकुमाद् रक्त- चन्दनैः, तथा गोरोचनाभिश्च विलिख्य साधकोत्तमः ।
सु -तिथौ शुभ - नक्षत्रे लिखित्वा दक्षिणे भुजे, धारयेत् परया भक्त्या देवी - रूपेण पार्वति !
तस्य सिद्धिर्महेशानि ! अचिराद्धि भविष्यति, रणे राज - कुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् ।
देवाः सर्वे वशं यान्ति किं पुनर्मानवादयः, वाय्वादीनां गति - स्तम्भं करोत्येव न संशयः ।
पठेद् वा धारयेद् वाऽपि देवी-बुद्धया च पार्वति ! इह भुक्त्वा वरान् भोगान् कृत्वा काव्यार्थ-विस्तरान् ।
अन्ते देव्या गणत्वं च साधको मुक्तिमाप्नुयात्, प्राप्नोति देव-देवेशि ! सर्वदा नात्र संशयः ।
हीनाङ्गे चातिरिक्ताङ्गे शठाय पर-शिष्यके, न दातव्यं महा-देवि ! प्राणान्तेऽपि कदाचन ।
शिष्याय भक्ति-युक्ताय विनीताय महेश्वरि ! दातव्यं स्तव - राजं च सर्व - सिद्धि-समायुतम् ।
य इदं भुवनेश्वर्य्याः स्तव-राजं महेश्वरि ! लिखित्वा धारयेद् देहे दुःखं तस्य न जायते ।
इति ते कथितं देवि ! भुवनेश्याः सहस्रकम्, सुर - तरुमिव कान्तं सिद्ध - संघैक - सेव्यम् ।
यदि पठति मनुष्यो नान्य-चेताः सदैव, व्रजति तव समीपं लोक- संस्तूय - मानः ।

॥ श्रीरुद्रयामले तन्त्रे श्रीभुवनेश्वरी-सहस्र-नामाख्यं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

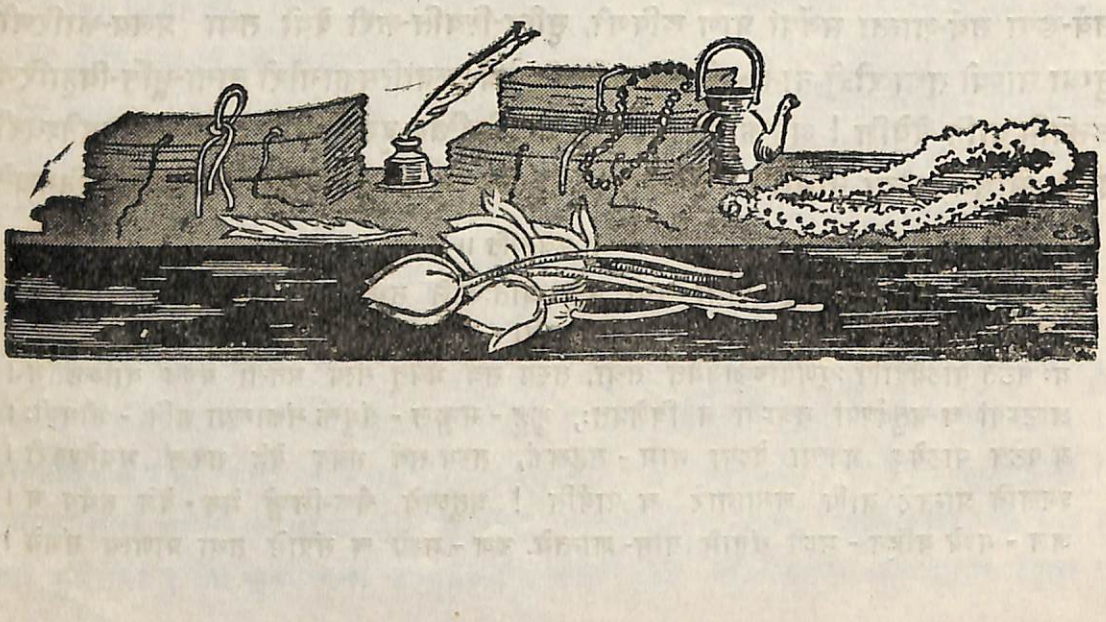

परिशिष्ट

'श्रीभुवनेश्वरी त्रैलोक्य-मङ्गल कवच'

के

सम्बन्ध में जिज्ञासा का समाधान

'श्री भुवनेश्वरी त्रैलोक्य-मङ्गल कवच' की फल-श्रुति के अन्त में लिखा है—

एतत् कवचमज्ञात्वा यो जपेद् भुवनेश्वरीम् ॥
दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥८

अर्थात् इस कवच के जाने बिना जो भुवनेश्वरी के मन्त्र का जप करता है, वह दरिद्र होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है।

साधारणतः जिन व्यक्तियों की इष्ट-देवता श्री भुवनेश्वरी हैं, वे बिना ध्यानादि के भी स्नान कर या अन्य समय भी १० या १०८ बार या विशेष बार भी माला पर अथवा अँगुली पर, अपने गुरुदेव से पाये हुए अपने इष्ट-मन्त्र का जप कर लेते हैं। अथवा जिसे ध्यान कण्ठाग्र है, वह ध्यान कर १० बार या १०८ बार अथवा अधिक बार 'कवच-पाठ' किये बिना ही जप कर लेते हैं। अथवा कोई खाद्य वस्तु खाने या नवीन वस्त्र पहनने के समय, बहुत से शाक्त-बन्धु अधिक या कम-से-कम १० बार ही अँगुली पर अपने इष्ट-मन्त्र का जप कर नवीन वस्तु या वस्त्रादि इष्ट को अर्पण कर उसे खाते या पहनते हैं। अथवा जिन्हें यह कवच कण्ठाग्र नहीं है, वे समयाभाव से बिना 'कवच-पाठ' किए ही साधारण जप कर लेते हैं।

इन अवस्थाओं में प्रश्न उठते हैं कि—

(१) यदि उक्त फल-श्रुति का उपर्युक्त अर्थ सही है, तो क्या उपर्युक्त तरीके से साधारण जप भी 'कवच-पाठ' किये बिना नहीं करना चाहिए? जिन्हें कवच कण्ठाग्र नहीं है एवं अपढ़ पुरुष या स्त्री, जो यह 'कवच-पाठ' नहीं कर सकते, क्या वे अपने गुरुदेव से मिले श्री भुवनेश्वरी के मन्त्र को नहीं जप सकते?

अथवा फल-श्रुति के 'अज्ञात्वा'-शब्द का अर्थ यह है कि इसके पाठ आदि का कुछ विशेष विधि-विधान है, उसे जान कर ही तथा वह विधि-विधान करके ही कोई इस कवच का पाठ करे। यह अर्थ लेने पर भी इस 'कवच' के पाठ की अनिवार्यता तो बनी ही रहती है। वह कहाँ तक माननीय है?

(२) क्या श्री भुवनेश्वरी-कवच का पाठ किये बिना भुवनेश्वरी का सन्ध्या-वन्दनादि, श्री भुवनेश्वरी-स्तोत्र, शत-नाम तथा सहस्र-नाम एवं हृदय-स्तोत्र का साधारण पाठ नहीं करना चाहिए?

प्रश्नों का समाधान

(१) ऊपर कवच का जो श्लोक उद्धृत किया गया है, वह स्तोत्र की फल-श्रुति का भाग है और फल-श्रुति में अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रायः समावेश मिलता है—इस आशय से कि पाठ-कर्त्ता में विश्वास और एकाग्रता का भाव उत्पन्न हो सके। अतः 'अज्ञात्वा' का प्रयोग स्तोत्र के माहात्म्य की पुष्टि के लिये हुआ है, यही समझना उचित है। अनिवार्यता की कोई बात नहीं है।

(२) साधारण व्यक्तियों के सम्बन्ध में जो शङ्का उठाई गई है, उसके सम्बन्ध में यह उल्लेख करना उचित होगा कि निष्काम भाव से जो भी जप, पाठ आदि किये जाते हैं, उनसे आत्म-कल्याण का ही मार्ग प्रशस्त होता है ।

जो लोग अज्ञानता-वश या समयाभाव के कारण विधि-विधान-पूर्वक समस्त पूजा-अङ्गों का अभ्यास नहीं कर पाते, उन्हें उसके लिए किसी प्रकार का दोष या प्रायश्चित्त नहीं लगता । हाँ, जो व्यक्ति किसी कामना-विशेष को लेकर पुरश्चरण या प्रयोग के लक्ष्य से किसी मन्त्र या कवचादि का जप या पाठ करते हैं, उन्हें विधि-विधान का पालन करना आवश्यक है । अन्यथा उन्हें लाभ के स्थान में हानि होना सम्भव है ।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल आत्म-कल्याण की भावना से जो लोग किसी देवता की उपासना करते हैं, उनके लिए यह अनिवार्य नहीं है कि कवच, शत-नाम, सहस्र-नाम आदि स्तोत्रों के पाठ के साथ ही अपना साधारण नित्य पूजन करें । यदि अवकाश वास्तव में नहीं है, तो इष्ट-मन्त्र का सामान्य जप ही पर्याप्त है । सद्गुरु प्रायः ऐसा ही निर्देश देते भी हैं ।

'कवच के विधान' के सम्बन्ध में फल-श्रुति में दिया है कि—'मूल-मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलियाँ इष्ट-देवता को अर्पित कर नित्य एक बार पाठ करना चाहिए । इस प्रकार एक वर्ष तक बराबर करने से पूजा का फल प्राप्त होता है ।'

इससे स्पष्ट है कि भगवती भुवनेश्वरी की पूजा करने के पश्चात् उन्हें मूल-मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलि देकर इस कवच-स्तोत्र का प्रतिदिन एक वर्ष तक पुरश्चरण के नियमों का पालन करते हुए, यदि कोई पाठ करे, तो उसके अभीष्ट की सिद्धि होगी ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भगवती भुवनेश्वरी ही नहीं, सभी देवताओं के सम्बन्ध में उक्त समाधान ध्यान में रखना चाहिए ।

शाक्त-बन्धुओं के लिये अनुपम उपहार

श्रीशङ्कराचार्य-विरचित

श्रीभगवती मानस-पूजा-स्तोत्रम्

(हिन्दी अर्थ-सहित)

मूल्य ४-०० रु०